शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया

राष्ट्रीय जीवनचरित

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया

ख़लीक़ अहमद निज़ामी

अनुवाद

निज़ामुद्दीन

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2755-0

पहला संस्करण : 1988
दूसरी आवृत्ति : 1999 (*शक 1921*)

रु. **25.00**

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

विषय-सूची

प्राक्कथन

भारत के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक इतिहास में शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया (1243–1325) के व्यक्तित्व एवं उनके महान कार्यों को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है । उन्होंने कमोबेश आधी शताब्दी दिल्ली में बैठकर इंसानी दिलों को प्रेम के धागे में पिरोने और सृष्टिकर्ता से उनका अटूट संबंध जोड़ने में व्यतीत की । अपने पीर-महात्मा बाबा फ़रीद गंजशकर की भांति वह सीते और जोड़ते थे । गरेबां चाक हो या टूटा हुआ दिल, जोड़ने में उनको एक आध्यात्मिक मादकता अनुभव होती थी । वियोग की जगह संयोग, घृणा की जगह प्रेम—इसी को उन्होंने अपना दृष्टिकोण बनाया था; और इसी के लिए रात-दिन संघर्ष करते थे । उन्होंने धर्म की वह क्रांतिकारी भावना प्रस्तुत की थी जिसमें लोक-सेवा को धार्मिक उपासना का दर्जा प्राप्त हो गया था । उन्होंने स्वयं कभी किसी राजा के आस्ताने पर हाजिरी नहीं दी, बल्कि दरबारी माहौल और प्रभाव से अपने आपको इतना दूर रखा कि उनकी ख़ानक़ाह दिल्ली में होते हुए भी दिल्ली राज्य का अंग न बन सकी । यहां का जीवन दूसरे ही सिद्धांतों पर ढला हुआ था । सरकारी आदेश यहां के शांत, आध्यात्मिक वातावरण को प्रभावित करने की शक्ति नहीं रखते थे । राजा और राजनीति दोनों से पृथक रहकर उन्होंने आदमगरी का कार्य किया और आध्यात्मिक भावना से परिपूर्ण लोगों की एक ऐसी नस्ल पैदा की जिसने अपने जीवन को नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की सेवा में लगा दिया । उनकी ख़ानक़ाह से मानवता, आध्यात्मिकता और मानव-मैत्री के स्रोत फूट-फूटकर सारे देश में फैल गए ।

जमाने ने कितने ही रंग बदले । राजनीतिक उतार-चढ़ाव की कितनी ही कथाएं विश्व-पटल पर लिखी गईं, कितने ही राजा शीघ्र नष्ट होने वाले नजारों की भांति अपने तेज व प्रताप के जलवे दिखाकर सदा के लिए लुप्त हो गए । लेकिन अमीर ख़ुसरो के अनुसार शेख़ शेख़ाधिपति की दशा—

शाहंशहे बे सरीरो[1] बेताज
शाहानश ब ख़ाकपाये मोहताज

1. सिंहासन

ही रही ।

हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया की जीवनी सामयिक तथा प्रामाणिक सामग्री की रोशनी में तैयार की गई है और सीमित आकार का ध्यान रखते हुए विषय को एक सीमा से आगे नहीं बढ़ने दिया गया है ।

यह कार्य कई वर्ष पूर्व नेशनल बुक ट्रस्ट की ओर से मुझे सौंपा गया था । अपनी लापरवाही को स्वीकार करने के साथ क्षमा-याचना करता हूं कि कुछ और कार्यों में व्यस्त रहने के कारण इसकी पूर्ति में अनावश्यक विलंब हो गया । बहरहाल, डाक्टर सैयद असद अली और डाक्टर (श्रीमती) सविता जाजोदिया के सहयोग को धन्यवाद देना मेरा सुखद कर्तव्य है ।

—ख़लीक़ अहमद निज़ामी

भूमिका

हज़रत अमीर ख़ुसरो ने अपने गुरु शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया को ख़िज्र और मसीह के गुणों से संपन्न बताया है और कहा है कि ख्वाजा का अस्तित्व पानी और मिट्टी से नहीं बल्कि ख़िज्र और मसीह की जान को मिलाकर बनाया गया है। ख़िज्र का काम इंसान को सद्मार्ग दिखाना और अध्यात्म की ओर उसका मार्ग निर्देशन करना है । हज़रत ईसा अपने दम से मुर्दों को जीवित कर देते और उनमें नई आत्मा, नए प्राण डाल देते थे । ख़ुसरो ने अपने शेख़ को उन दोनों की मसनद पर आसीन देखा । इसलिए उन्होंने अपने भटके हुओं को सत्य का मार्ग दर्शाया था तथा रोगी दिलों को स्वस्थ बनाया था । उन्होंने बार-बार शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया को दिलों का हकीम कहा है । संभवतया इक़बाल की दृष्टि भी शेख़ के इन दो गुणों पर गई थी, जब उन्होंने लिखा था—

तेरे लहद की ज़ियारत है जिंदगी दिल की
मसीह व ख़िज्र से ऊंचा मकाम है तेरा

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने सद्मार्ग दिखाने और बुराई से बचाने के काम को इंसानियत का बड़ा उत्तरदायित्व समझकर पूर्ण किया । यह उनके जीवन का एक ऐसा उद्देश्य था जिसके चारों ओर उनके जीवन की संपूर्ण सामर्थ्य, योग्यताएं एकत्रित हो गई थीं । बाबा फ़रीदगंज ने उनके लिए दुआ की थी कि तू ऐसा वृक्ष बने जिसकी छाया में असंख्य प्राणी सुख-चैन से रहें । लगभग 50 वर्षों तक इंसानी दिलों ने इस प्रकार उनकी ख़ानक़ाह में सुख-चैन प्राप्त किया, जिस प्रकार सूर्य की प्रचंड गर्मी से कोई थका-हारा पथिक शीतल छायादार वृक्ष के नीचे बैठकर आनंद और चैन की सांस लेता है ।

तसव्वुफ़ के इतिहास का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया ज़ाए तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा कि सूफियों का सारा संघर्ष उन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए था । उनका ख्याल था कि इंसान को इंसान बनाना एक धार्मिक कर्म है । रसूले-अकरम मुहम्मद साहब का कहना है—"मैं सच्चरित्र की पूर्ति के लिए भेजा गया हूं ।" सदा उनकी दृष्टि के सामने रहता था । वह कहते थे कि इंसान को न्यायप्रियता

और सच्चाई की ओर बुलाना एक पैगंबराना काम है और इसके लिए प्रयत्न करना इंसान के सबसे बड़े कर्तव्यों में से है । रसूले अकरम मुहम्मद साहब ने एक बार फरमाया था—

> ''मैं उन लोगों को पहचानता हूं जो न पैगंबर हैं और न शहीद, लेकिन कयामत में उनके आसन की उच्चता पर पैगंबर और शहीद भी ईर्ष्या करेंगे । ये वो लोग हैं जिनको खुदा से प्रेम है और जिनको खुदा प्यार करता है । वे अच्छी बातें बताते हैं और बुरी बातों से रोकते हैं ।''

'अच्छी बातें बताने' और 'बुरी बातों से रोकने' में ही मानव-समाज के कल्याण का रहस्य निहित है । शेख़ अबुल हसन का यह कथन 'कशफ़ुल-महजूब' से उद्धृत किया गया है—''तसव्वुफ़ रीतियों और विद्याओं का नाम नहीं है बल्कि सद्व्यवहार का, सदाचार का नाम है ।'' शेख़ों के निकट तसव्वुफ़ का अर्थ यह है कि इंसान स्वयं अपने अंदर सदाचार पैदा करे और संसार में रहने वालों को भौतिक प्रदूषणों, विकारों व बुराइयों से पाक-साफ करे । मानवजाति के साथ अपने संबंधों में विस्तार पैदा करना, दुखियों के दुख पर मरहम लगाना, बुराई से बचाना, भलाई की ओर ले जाना—ये वे काम हैं जो पूजा-पाठ से अधिक महत्वपूर्ण हैं । शेख़ निज़ामुद्दीन फरमाते थे—

> ''बहुत अधिक नमाज पढ़ना और वजीफों में—स्मरण में अधिक व्यस्त रहना, क़ुरआन मजीद के पाठ में अत्यधिक लीन रहना—ये सब काम कुछ भी कठिन नहीं हैं । प्रत्येक हिम्मत वाला आदमी कर सकता है, बल्कि एक वृद्ध नारी भी कर सकती है, तहज्जुदगुज़ारी (आधी रात की नमाज) में लीन रह सकती है । क़ुरआन मजीद के कुछ पारे पढ़ सकती है, लेकिन खुदा के मर्दों का काम कुछ और ही है ।'' (सैरुल औलिया)
>
> ''मजबूरों की फरियाद को सुनना, बूढ़े और असहायों की आवश्यकताओं को पूरा करना और भूखों का पेट भरना ।''
> (सैरुल औलिया)

फिर संघर्ष की अगली मंजिल यह थी कि इंसान में नैतिक मूल्यों के प्रति आदर-सम्मान पैदा किया जाए । तसव्वुफ़ के इस उद्देश्य और तरीके को शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने एक आध्यात्मिक आंदोलन का रूप दे दिया था । वह मानव-एकता के समर्थक थे और सादी की भांति उनका विश्वास था—''सब मनुष्य शरीर के अंगों की भांति एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, इसलिए

कि उनका जन्म एक ही जौहर से हुआ है ।''

वह 'सब प्राणी खुदा की औलाद हैं', इस पर विश्वास रखते थे और मानवजाति में प्रेम, एकता पैदा करना अपना धर्म समझते थे । कहते थे मनुष्य को ईश्वरत्व की गरिमा से अपने चरित्र का जल-वर्ण प्राप्त करना चाहिए । ईश्वर के ईश्वरत्व के द्योतक नदी, पृथ्वी और सूर्य हैं । नदी प्रत्येक प्यासे की प्यास बुझाती है, पृथ्वी का आंचल प्रत्येक प्राणी के लिए फैला रहता है । सूर्य जब उदय होता है तो राजाओं के महल और भिखारियों की झोपड़ियां समान रूप से उसकी किरण-ज्योति से लाभान्वित होती हैं। ईश्वरत्व का गुण (प्रकृति) यह है कि वह किसी प्राणी को अपने वरदानों से वंचित नहीं करता । मनुष्य को ईश्वरत्व की गरिमा से सीखना चाहिए कि ईश्वर के बंदों के साथ किस प्रकार व्यवहार किया जाए । ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती उपदेश दिया करते थे—

> ''मनुष्य को नदी जैसी उदारता, सूर्य जैसी कृपा और धरती
> जैसी नम्रता उत्पन्न करनी चाहिए ।'' (सैरुल औलिया)

उनके वरदान, मेहरबानियां अपने-पराये का भेद नहीं करतीं और प्रत्येक अच्छे-बुरे, छोटे-बड़े के लिए सामान्य हैं। ईश्वरत्व का अर्थ है, जो मौलाना अबुल कलाम आजाद ने 'तर्जुमानुल क़ुरआन' में स्पष्ट किया है, यदि सामने रहे तो सूफियों की कोशिश के वास्तविक रूप को समझने में सहायता मिले ।

भारत के इतिहास में हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया का जो स्थान है और उनके प्रभाव की सीमा जिस प्रकार धार्मिक, क्षेत्रीय, भाषाई बंधनों को तोड़कर चारों ओर फैली है, इसका दूसरा उदाहरण कठिनता से मिलेगा । उनकी ख़ानक़ाह में अध्यात्म के प्यासे अपनी आध्यात्मिक प्यास बुझाने के लिए बड़े चाव से एकत्रित होते थे और जीवन के कंटकाकीर्ण मार्ग में थककर बैठ जाने वाले अपने दिलों में नई शक्ति और अपने संकल्प में जीवन की नई उमंग अनुभव करते थे । उनका विश्वास था कि जो इंसान अपने दिल को सृष्टिकर्ता के प्रेम और उसके आदेश के पालन में लगा देता है, उसके जीवन में तेजस्विता, उसके विचारों में समानता और उसकी भावनाओं में इत्मिनान उत्पन्न हो जाता है । इसलिए वह इंसानी दिलों को दुख-परेशानी से मुक्ति दिलाने के प्रयत्न में लगे रहते थे और दूसरों की कठिनाइयां दूर करने के लिए स्वयं अपने दिल को निरंतर परेशानी से ग्रस्त रखते थे । ख्वाजा अज़ीज़ुद्दीन एक दावत में शामिल होने के बाद शेख़ की सेवा में उपस्थित हुए । शेख़ ने पूछा—'कहां से आ रहे हो ?'

निवेदन किया—'अमुक व्यक्ति के यहां निमंत्रित था । वहां लोग कहते थे कि शेख़ निज़ामुद्दीन को विचित्र आंतरिक छुटकारा प्राप्त है, उनको किसी प्रकार की कोई चिंता और दुख नहीं' । शेख़ ने यह सुनकर वेदनापूर्ण स्वर में फरमाया—

> ''जितनी अधिक दुख-चिंता मुझे रहती है, उतनी अधिक इस संसार में किसी को न होगी, इसलिए कि इतने अधिक लोग मेरे पास आते हैं और अपने दुख-दर्द कहते हैं, उन सबका भार मेरे प्राणों, हृदय पर पड़ता है ।''

इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं थी । उनका जीवन लोगों की इस दुखानुभूति का दर्पण था । वह अक्सर रोज़ा रखा करते थे, लेकिन सहरी (पौ फटने से पूर्व तक रोज़ा रखने के लिए भोजन करना) कभी कभी ही खाते थे । ख्वाजा अब्दुर्रहीम जिनके जिम्मे सहरी पेंश करना था, निवेदन करते—'स्वामी ! आपने इफ्तार के समय बहुत ही कम खाना खाया है, यदि सहरी के समय थोड़ा-सा खाना न खायेंगे तो दुर्बलता बढ़ जाएगी ।' ख्वाजा अब्दुर्रहीम की यह बात सुनकर हज़रत महबूबे-इलाही की आंखों से आंसू प्रवाहित हो जाते और अत्यंत करुणार्द्र स्वर में फरमाते—

> ''बहुत से भिखारी और दरवेश मस्जिदों के कोनों और दुकानों के चबूतरों में भूखे पड़े हुए हैं, भला यह खाना किस प्रकार मेरे गले से उतर सकता है ।'' (सैरुल औलिया)

शेख़ की ख़ानक़ाह के निकट गर्मी के दिनों में एक बार ऐसी आग लगी कि बहुत से छप्पर जलकर राख हो गए, शेख़ घबराकर नंगे पैर सभाखाना की छत पर पहुंच गए और शिष्यों, अनुयायियों को आग बुझाने में लगा दिया और जब तक आग न बुझी तब तक नीचे न आए । फिर प्रत्येक घर में खाने की थाली (तश्त, तबाक़), पानी की एक सुराही और चार तनके (तत्कालीन प्रचलित सिक्का) भेजे—यह थी लोगों के लिए वह संवेदनशीलता, दुखानुभूति जिसने महबूबे-इलाही को 'महबूबे-आलम'—लोगों का प्यारा बना दिया था । उनकी लोकप्रियता का अनुमान समकालीन इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बर्नी के इस कथन से लगाया जा सकता है, लिखा है—

''उस युग में (यानी अलाउद्दीन ख़िल्जी के युग में) शेखुल-इस्लाम निज़ामुद्दीन ने दीक्षा के द्वार जनसाधारण के लिए खोल दिए थे—पापों से तौबा, प्रायश्चित कराते और उनको कंथा, गुदड़ी देते थे और अपना शिष्य बनाते थे । प्रत्येक विशिष्ट और साधारण, धनी और निर्धन, निरक्षर और विद्वान, सज्जन और दुर्जन, नागरिक और ग्रामीण, धर्मयोद्धा, विधर्मियों से लड़ने वाले, स्वतंत्र,

दास को अपनी टोपी प्रदान करते, प्रायश्चित का उपदेश देते और मिस्वाक (दातुन) प्रयोग करने का आदेश देते थे । अनेक लोग जो अपने आपको शेख के मुरीदों में गिनते थे, बुरी बातों से बचते थे । यदि किसी मुरीद से कोई त्रुटि हो जाती थी तो वह नए सिरे से दीक्षित होकर गुदड़ी प्राप्त करता था । शेख़ के मुरीद होने की लाज गैरत लोगों को गुप्त या खुल्लमखुल्ला पाप-कर्म से बचाती थी । जनसाधारण को पाठ-पूजा में रुचि पैदा हो गई थी । स्त्री और पुरुष, बूढ़े और जवान, बाजारी, आम लोग, दास व नौकर, बच्चे और कम आयु वाले नमाज की ओर प्रवृत्त हो गए थे । अक्सर उनमें से 'चाश्त' और 'इश्राक़' (सूर्योदय के पश्चात पढ़ी जाने वाली नमाजें) की पाबंदी भी करते थे । श्रद्धालुओं ने नगर से गयासपुर तक विभिन्न गांवों में चबूतरे बनवाकर उन पर छप्पर डाल दिए थे और कुएं खुदवाकर वहां मटके, कटोरे और मिट्टी के लोटे रख दिए थे । बोरिये बिछे रहते थे । प्रत्येक चबूतरे पर हाफ़िज़ और सेवक नियुक्त थे ताकि शेख़ के आस्ताने पर आने-जाने वाले वुजू (नमाज से पूर्व हाथ-मुंह आदि धोना) करके नमाज पढ़ सकें । प्रत्येक चबूतरे पर जो मार्ग में बना हुआ था, नफलें पढ़नेवालों का जमघट रहता था.....इस प्रकार लोगों में पापवृत्ति कम हो गई थी......और साधारण और विशिष्ट के हृदय सत्कर्म, पुण्य की ओर प्रवृत्त हो गए थे........शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया उस युग में जुनैद व शेख़ बायज़ीद के समान थे ।"[1] (तारीख़ फीरोज़शाही)

हज़रत शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया की परिस्थितियां और शिक्षाओं में कुछ प्रामाणिक और विश्वस्त पुस्तकें उपलब्ध होती हैं । उनके चिंतन की उत्तम तस्वीर 'फ़वाइदुलफ़वाद' में दिखाई देती है, जिसे उनके प्रिय शिष्य और अमीर खुसरो के मित्र अमीर हसन अला संजरी ने संपादित किया था और शेख़ ने भी उसको देखकर पुष्टि की थी । 'फ़वाइदुलफ़वाद' पांच संक्षिप्त भागों में संकलित है जिनमें तिथियों के अनुसार भिन्न भिन्न मजलिसों का विवरण अंकित है—

भाग एक—3 शौबान 707 हि० से 29 ज़िल्हिज्ज 708 हि० तक
भाग दो — 29 शव्वाल 709 हि० से 13 शव्वाल 712 हि० तक
भाग तीन — 27 ज़ीक़ाद 712 हि० से 21 ज़िल्हिज्ज 713 हि० तक
भाग चार — 24 मुहर्रम 714 हि० से 23 रजब 7.19 हि० तक

1. अमीर खुसरो भी शेख़ को जुनैद और बायजीद के समान कहते थे—(कुतुब आलम शेख़ निज़ामुल-मिल्लत व दैन सूर्यवदन हैं) उनकी हस्ती हज़रत जुनैद, हज़रत शिब्ली और हज़रत मारूफ़ कर्ख़ी की यादगार है ।

भाग पांच — 21 शौबान 719 हि० से 19 शौबान 722 हि० तक

पहले भाग में 34, दूसरे में 38, तीसरे में 17, चौथे में 67 और पांचवें में 32 मजलिसों का वर्णन अंकित है । इस प्रकार कुल 188 दिन की शेख़ की मजलिसों का वर्णन 'फ़वाइदुलफ़वाद' में आ गया है । शेख़ ने आधी शताब्दी से अधिक सुधार और दुरुस्तगी, उपदेश और प्रवचन का कार्य संपन्न किया था । इस दृष्टि से देखा जाए तो ये मजलिसें शेख़ की शिक्षा का बहुत ही संक्षिप्त और सीमित चित्र प्रस्तुत करती हैं । बहरहाल जो भी हो, वह अपनी प्रासंगिकता और प्रामाणिकता के आधार पर मूल्यवान हैं । यदि इन मजलिसों को इतिहास के चौखट में सजा लिया जाए तो बहुत सार्थक होगा । जैसे 24 मुहर्रम 710 हि० को मलिक काफ़ूर दक्षिण भारत की मुहीम से वापस आया और आंखों को चकाचौंध करने वाली दौलत साथ लाया था । नासिरी के चबूतरे पर उसका स्वागत किया गया और समस्त माल व दौलत को वहां सजा दिया गया ।

(खज़ाइनुलफ़तूह)

दूसरे दिन यानी 25 मुहर्रम को शेख़ ने अपनी मजलिस में जो फरमाया उसका विवरण अमीर हसन ने इस प्रकार अंकित किया है —

> "बुद्धवार को 25 मुहर्रम 710 हि० को चरण चूमने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो उन लोगों के विषय में बातचीत शुरू हुई जो खजाने जमा करते हैं और जितना अधिक धन होता जाता है उतनी ही अधिक लालसा बढ़ती जाती है, और अधिक मांगते हैं । मुखारविंद से फरमाया कि अल्लाह ने विभिन्न प्रकृतियों के लोग पैदा किए हैं । कुछ ऐसे हैं कि निश्चित खर्च से अधिक यदि मिल जाए तो जब तक उसे खर्च नहीं कर लेते उन्हें चैन नहीं पड़ता । और कुछ ऐसे हैं कि जितना अधिक उन्हें मिलता है वे और अधिक की कामना करते हैं। यह आदिकालीन भाग्य है। इसके बाद फरमाया कि सोने-चांदी से आराम उसी समय प्राप्त होता है जब उसे खर्च किया जाए। जब तक उसे खर्च न किया जाए आराम प्राप्त नहीं हो सकता। जैसे यदि कोई व्यक्ति खाने-पीने या कपड़े आदि की अभिलाषा करे तो जब तक वह रुपया खर्च नहीं करेगा, कुछ प्राप्त नहीं करेगा । अतएव ज्ञात हो गया कि यदि रुपये से आराम मिल

सकता है तो खर्च करने से मिलता है न कि जमा करने से ।''

इस सारी बातचीत की पृष्ठभूमि यदि ध्यान में हो तो शेख़ की शिक्षा और उसके प्रभाव का विश्लेषण अधिक सार्थक हो सकता है ।

एक और दूसरा संकलन (वाणी, प्रवचन) जो फ़वाइदुलफ़वाद से भी अधिक संक्षिप्त है 'दुरर निज़ामी' है जिसे मौलाना अली जानदार ने संपादित किया था । इस संकलन की अधिकांश जानकारी 'सैरुल औलिया' में आ गई है । एक और संकलन 'अफ़जलुल फ़वायद' अमीर खुसरो से संबंधित है । उसमें शेख़ की शिक्षा को विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है । बातचीत का ढंग, प्रवचनों से अधिक उसे संपादित करने का, लिखने का है । इन प्रवचनों के अतिरिक्त और बहुत से प्रवचनों के संग्रह जैसे 'अनवारुल मजालिस' (संपादित ख्वाजा मुहम्मद), 'तोहफ़ातुल अबरार' व 'करामतुल अख्यार' (संपादित ख्वाजा अज़ीजुद्दीन) नष्ट हो गए ।

शेख़ के कुछ खलीफाओं की वाणी से, प्रवचनों से भी उनकी शिक्षा और जीवन की परिस्थितियों पर प्रकाश पड़ता है । जैसे शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहलवी की पुस्तक (वाणी) 'ख़ैरुलमजालिस', और शेख़ बुरहानुद्दीन ग़रीब की पुस्तक 'अहसानुल-अक़वाल', 'नफ़ाइसुल-अनफ़ास', 'शमाइलुल-अतक़िया' आदि में शेख़ के जीवन के कुछ रोचक विवरण मिलते हैं । 'जवामिउल कलम', जो शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहलवी के खलीफा सैयद गेसूदराज़ की पुस्तक है, में कुछ ऐसे प्रसंग मिलते हैं कि जिनसे शेख़ की सामाजिक और सुधारवादी गतिविधियों पर प्रकाश पड़ता है ।

शेख़ की जीवनी और उनके पीरों (गुरूओं) की परंपरा का संकलित वृत्तांत लिखने का सौभाग्य एक ऐसे वंश को प्राप्त है जिसका शेख़ से घनिष्ठ संबंध था और जिसने शेख़ को न केवल दिल्ली में ही, बल्कि अजोधन में भी देखा था और उनके जीवन के भिन्न कालों में उनका साथ दिया था । सैयद मुहम्मद किरमानी अल-मारूफ़ व मीर ख़ोरद, किरमानी खानदान से संबंध रखते थे । उनके दादा शेख़ फ़रीदुद्दीन गंजशकर के सभाभवन (दीवानखाना) में शेख़ निज़ामुद्दीन से मिले थे और उस वंश को शेख़ निज़ामुद्दीन से अत्यंत निस्वार्थ संबंध और श्रद्धा पैदा हो गई थी, बाद में जब यह वंश दिल्ली आ गया तो संबंधों में और अधिक वृद्धि हो गई । 'सैरुल औलिया' शेख़ निज़ामुद्दीन के जीवन-वृत्तांत में अति प्रामाणिक ग्रंथ है ।

बाद के उल्लेखों-प्रसंगों, जैसे 'सैरुल आरिफ़ीन' (फ़जलुल्लाह अल-

मारूफ़, दरवेश जमाली), 'अख़बारुल अख़्यार' [शेख़ अब्दुलहक़ मुहद्दिस के (हदीस के विद्वान) देहलवी], 'गुलज़ारे अबरार' (मुहम्मद ग़ौसी शत्तारी), 'मरआतुल असरास' (अब्दुर्रहमान चिश्ती), 'मआरिजुल वलायत' (मुईनुद्दीन अब्दुल्ला-अल ख़वेशगी) आदि में शेख़ का विशद वृत्तांत अवश्य मिलता है, लेकिन यह अधिकांश सामयिक सामग्री से ही प्राप्त किया गया है और कुछेक घटनाओं, प्रसंगों के अलावा कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं कराता ।

बहरहाल यह वास्तविकता है कि मध्यकालीन किसी दूसरे व्यक्तित्व के संबंध में हमारा ज्ञान इतना विविध और विस्तृत नहीं जितना शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के विषय में । यही कारण है कि उनका नाम जुबान पर आते ही कितने ही चित्र एक साथ कल्पना में जगमगा उठते हैं और ऐसा महसूस होता है कि दिक और काल की (ज़मां व मकां) की सकल व्यापकता सिमट गई है और हम ग़यासपुर में उनके दीवानखाने में पहुंच गए हैं जहां आध्यात्मिकता, इंसानियत और सहानुभूति की किरणें फूट-फूटकर सारे वातावरण को आलोकित कर रही हैं ।

1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के दादा और नाना दोनों बुखारा से भारत आए थे और उन्होंने बदायूं को अपना निवास-स्थान बना लिया था । शेख़ का जन्म बदायूं में ही हुआ था, बाद में वह दिल्ली आए और फिर (अजोधन की कुछ यात्राओं को छोड़कर) जीवन-पर्यंत दिल्ली में ही बसे रहे । उनके वंश की परिस्थितियों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए जरूरी है कि मध्य एशिया और भारत दोनों की परिस्थितियों पर दृष्टि डाली जाए ।

कुछ समय से एशिया में एक कबाइली हरकत पैदा हो गई थी । उसे तुर्कनिगुजू के आक्रमणों और मंगोलों की विनाश-लीला ने और अधिक तेज कर दिया । मंगोलों ने न केवल राजनीतिक मूल्यों के केंद्र नष्ट किए, बल्कि पूरी सामाजिक व्यवस्था भी नष्ट भ्रष्ट कर दी । मुसलमानों के ज्ञान और संस्कृति के महान केंद्रों में धूल उड़ने लगी । मदरसे, ख़ानक़ाहें, रबात (मुसाफिरखाना, आश्रय-स्थल), ज़ाविए (एकांत गृह) और मस्जिदें सब कुछ प्रकाशहीन और दीपकविहीन हो गए । मंगोल जिस नगर पर आक्रमण करते, उसे एक ढेर में बदल देते थे और यह पता लगाना भी मुश्किल हो जाता था कि कौन-सा नगर कहां बसा था । वह एक प्रलयकारी तूफान की भांति उमड़ते चले आते थे । इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि 'तबकात-नासिरी' के लेखक मिन्हाजस्सिराज की तरह कुछ और लोगों ने भी आक्रमण में प्रलय के चिह्न देखे हों । जब यह तूफान बगदाद पहुंचा तो इस्लाम के अभिमानियों का ताज मिट्टी में मिल गया और सादी का यह हृदयविदारक मर्सिया वातावरण में गूंजने लगा—

"न्यायोचित होगा यदि आकाश अमीरुल मोमिनीन होरून रशीद देश के पतन पर खून पृथ्वी पर बरसाए । ए मुहम्मद ! यदि क़यामत (प्रलय) के दिन आप धरती से बाहर निकलेंगे तो सिर बाहर निकालिए, देखिए क़यामत हो चुकी है ।"

बुखारा जरअफशां नदी के निचले मार्ग पर एक नखलिस्तान (मरुद्वीप) में स्थित है और एक समय से इस्लामी सभ्यता और संस्कृति का महान केंद्र

था। । कहा जाता है कि बुखारा में अरबों की सेना सन् 674 ई० में उबैद-बिन-जियाद के नेतृत्व में पहुंची थी । सामानियों के युग में बुखारा ने बहुत उन्नति की । अन्नरशखी और अरब के भूगोल-लेखकों ने बुखारा की भौगोलिक और आर्थिक स्थिति पर काफी प्रकाश डाला है । इब्नुल असीर के कथनानुसार बुखारा ने 10 फरवरी 1220 ई० को चंगेजखां की सेना की अधीनता स्वीकार की थी । मंगोलों ने नगर को नष्ट किया और जामा मस्जिद तथा कुछ महलों को छोड़कर संपूर्ण नगर में आग लगा दी ।

बुखारा को मीर खुरद ने विद्या तथा कला के केंद्र और संयम, इंद्रिय-निग्रह का स्रोत बताया है, और यह वास्तविकता है । आध्यात्मिक दृष्टि से बुखारा और उसके आसपास का सारा क्षेत्र ख्वाजा-परंपरा के शेखों के प्रभाव में था और गांव गांव में ख्वाजाओं की ख़ानक़ाहें और ज़ाविए स्थापित थे । मीर खुरद ने लिखा है कि शेख़ निजामुद्दीन औलिया के नाना ख्वाजा अरब के वंश में चार पीढ़ियों तक ख्वाजा की उपाधि प्रयोग होती रही (ख्वाजा अरब, ख्वाजा अब्दुल्लाह, ख्वाजा सईद, ख्वाजा अब्दुल अजीज़) । ऐसा प्रतीत होता है कि ख्वाजा अरब ख्वाजगान-परंपरा से संबंधित थे और इसी आधार पर उनके वंश में ख्वाजा की उपाधि प्रयुक्त होती थी ।

भारत की राजनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि बुखारा के वातावरण से भिन्न थी । सन् 1210 ई० में अल्तमश ने दिल्ली-राज्य की बुनियाद डाली । विचित्र संयोग था कि दिल्ली-राज्य की स्थापना और मंगोलों का उत्कर्ष लगभग एक ही समय में हुआ । संभवत: सन् 1220 के हंगामे के बाद शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के दादा और नाना ने (ख्वाजा अरब और ख्वाजा अली) भारत का रुख किया । उनके पीछे-पीछे चंगेजखां का भयानक तूफान चला आ रहा था । संभवत: यही कारण था कि लाहौर या दिल्ली के बजाय वे बदायूं की ओर प्रवृत्त हुए । आमतौर पर उस युग में यह होता था कि जो वंश शाही नौकरी या राजनीतिक जीवन की गतिविधियों से दूर रहना चाहता था वह दिल्ली के बजाय बदायूं जा बसता था ।

चंगेजी आक्रमणों से प्राण बचाने के लिए असंख्य लोग भारत की ओर चल पड़े थे जहां एक नई राजनीतिक शक्ति—दिल्ली-राज्य का उदय हो रहा था । असामी ने दिल्ली आने वालों का वर्णन इस प्रकार किया है —

"इस नगर (दिल्ली) में एक रौनक आ गई । सच तो यह है कि प्रत्येक नई वस्तु में एक आनंद होता है । अनेक शुद्धवंश सैयद अरब से वहां आकर बस गए । खुरासान के बहुत से शिल्पकार और चीन के चित्रकार यहां आ

गए । बुखारा के अनेक विद्वान और अन्य देशों के त्यागी-तपस्वी इधर आए। यूनान के दार्शनिक, रोम के हकीम, गरज यह कि हर जगह से बुद्धिजीवी यहां आकर बस गए । शुभ नगर दिल्ली में ये लोग इस प्रकार एकत्रित हुए जैसे दीपक के चारों ओर पतंगे ।''

अल्तमश ने बड़ी वीरता और साहस के साथ दिल्ली-राज्य की बुनियाद डाली और इसके राजनीतिक ढांचे और सांस्कृतिक संस्थाओं को परवान चढ़ाया । स्वयं एक समय में वह बुखारा में रहा था और कोई आश्चर्य नहीं कि वहां की परिस्थितियों से भी अवगत रहा हो और वहां के समाचारों में रुचि लेता रहा हो । दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठने से पूर्व अल्तमश बदायूं का अधिकारी था, बल्कि उसके सांस्कृतिक विकास में उसका बड़ा हाथ था । हज़रत महबूबे-इलाही अपनी मजलिसों में आकर अल्तमश का वर्णन करते थे । उसकी धर्मपरायणता, रात्रिजागरण, अल्लाह पर पूर्ण विश्वास की कथाएं सुनाया करते थे । उसकी स्मरणशक्ति को बहुत तीव्र बताते थे । 'अम्ब' को उसी ने 'आम' नाम दिया । इसलिए कि तुर्की भाषा में 'अम्ब' शब्द अच्छे अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था । शेख़ निज़ामुद्दीन का वंश अल्तमश के ही युग में बदायूं पहुंचा होगा और उससे संबंधित अनेक कथाएं शेख ने अपने वंश में सुनी होंगी ।

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया नासिरुद्दीन महमूद के काल में दिल्ली पहुंचे थे और फिर सुल्तान महमूद-बिन-तुगलक के शासन-काल के पहले महीने तक दिल्ली में पदासीन रहे । उस अवधि में तीन राजवंश और नौ शासक दिल्ली के सिंहासन पर बैठे—

नासिरुद्दीन महमूद	—	1246-1266
बलबन	—	1266-1287
कैक़बाद	—	1287-1290
जलालुद्दीन ख़िल्जी	—	1290-1296
अलाउद्दीन ख़िल्जी	—	1296-1316
मुबारक ख़िल्जी	—	1316-1320
खुसरो खान	—	1320-
ग़यासुद्दीन तुगलक	—	1320-1325
मुहम्मद-बिन-तुगलक	—	1325-1351

इस अवधि में दिल्ली की राजनीति ने कितने ही रुख बदले, लेकिन कोई राजनीतिक हंगामा या सत्ता-परिवर्तन शेख़ को अपने एकांतवास से बाहर न ला सका । ख़िज़्रखां उनका शिष्य था लेकिन शेख ने उसके राजगद्दी पर बैठने में रत्तीभर

रुचि प्रकट न की । मुबारक ख़िल्जी ने उन्हें खुल्लम-खुल्ला बुरा-भला कहा, लेकिन उनकी जुबान पर कोई शिकायत का शब्द नहीं आया और उन्होंने दरबारी दुनिया की ओर कभी ध्यान नहीं दिया ।

उनके समय में दिल्ली के कई नगर आबाद हुए । अल्तमश की दिल्ली प्रसिद्ध थी—हौज़ शम्सी और कुतुबमीनार के लिए । दिल्ली का संपूर्ण सांस्कृतिक जीवन हौज़ शम्सी के किनारे देखा जा सकता था । फिर कैक़बाद ने एक नगर बसाया और ऐसे बाग लगवाए कि इतिहास 'वहामद खानी' के अनुसार मिस्र और बगदाद के बागों को लज्जा आ जाए । यह क्षेत्र शेख़ के बैठकखाने के निकट था और अधिकारी, धनीवर्ग के कारण यहां बहुत भागदौड़ रहती थी और शेख़ कभी कभी यह सोचते थे कि कहीं अन्यत्र प्रस्थान करें ताकि उनका समय बरबाद न हो । फिर अलाउद्दीन ख़िल्जी ने सीरी आबाद किया । तुगलक राजाओं ने दिल्ली के विस्तार में असाधारण रुचि दिखाई । ग़यासुद्दीन तुगलक ने तुगलकाबाद की आधारशिला रखी । प्रत्येक नए राजा के साथ दिल्ली का केंद्र परिवर्तित होता जाता था, लेकिन कोई भी परिवर्तन शेख़ के बैठकखाने के केंद्रीय महत्व पर प्रभाव न डाल सका ।

इस काल की मुख्य राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन करना हो तो सर्वप्रथम मंगोलों के आक्रमणों का अध्ययन करना होगा । राजनीतिक दृश्य, सांस्कृतिक जीवन, आर्थिक संतुलन सब पर इन आक्रमणों का प्रभाव पड़ा था । जब चंगेजखां, जलालुद्दीन मनक बर्नी का पीछा करता हुआ भारत पहुंचा तो अल्तमश ने इसी में अपनी भलाई समझी कि वह चंगेजों के विरोधियों से वास्ता न रखे ताकि अपनी सत्ता को सुरक्षित रख सके । उसने मनक बर्नी के दूतों का वध करवाकर चंगेजखां को विश्वास दिलाया कि वह उसका विरोध करने को तैयार न होगा । अल्तमश की औलाद ने मंगोलों के विषय में इसी नीति पर अमल किया । रज़िया ने गजनैन के गवर्नर क़र्नअ से मंगोलों के विरुद्ध संधि करने से साफ इनकार कर दिया । नासिरुद्दीन महमूद के युग के विषय में अमीर खुसरो लिखते हैं—

''विचित्र युग था जिसमें चारों ओर सफलता ही सफलता थी, प्रत्येक घर में हर्षोल्लास दृष्टिगत होता था । हिंदू और मुसलमान सब खुश थे । किसी को मुगल का नाम तक मालूम न था ।''

नासिरुद्दीन महमूद ने सन् 1260 ई० में (यानी बगदाद के अधिकार से निकलने के दो वर्ष बाद) हलाकू के दूतों का दिल्ली में भारी स्वागत किया । बगदाद के विध्वंस का घाव अभी भी हरा था । बलबन ने उस नीति

को बदला और आत्मरक्षा का सामान एकत्रित करना शुरू कर दिया । मंगोलों के आक्रमणों के स्थायी आतंक ने उसे राज्य की सीमा का विस्तार तो न करने दिया, लेकिन उसने दिल्ली में पंद्रह मुहल्ले बसाए जिनमें समरकंद, काशग़र, गौर, ख़ता आदि के लोगों को पृथक पृथक बसाया । शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने बलबन की धार्मिक भावना की प्रशंसा भी की है । फिर अलाउद्दीन ख़िल्जी के युग में मंगोलों के तीव्र आक्रमण हुए और दिल्ली राज्य का अस्तित्व खतरे में पड़ गया । लेकिन बादशाह ने बड़े साहस और दृढ़ता से परिस्थितियों का सामना किया और दक्षिण में भी अपनी विजय का क्रम जारी रखा । उस समय मुगलों के आक्रमणों की सूचना से जो हलचल मच जाती थी और जिस प्रकार आसपास के लोग भागकर दिल्ली की चारदीवारी में शरण लेते थे और महबूबे-इलाही की ख़ानक़ाह तक में लोगों का जमघट हो जाता था, उसकी हल्की-सी झलक 'खैरुल-मजालिस' और 'सैरुल औलिया' में मिलती है ।

अलाउद्दीन का शासनकाल कुछ दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण था । बादशाह ने जनसाधारण की कठिनाइयों को नजर में रखकर वस्तुओं के मूल्य निर्धारित किए थे और किसी व्यापारी या दुकानदार की यह हिम्मत न थी कि निर्धारित मूल्य से एक 'दांग' (छह रत्ती) भी अधिक ले सके । उस समय सस्तेपन की यह दशा थी कि शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहलवी के कथनानुसार फकीरों तक के पास एक छोड़ दो दो लबाइचे (चोगे, लंबे कुरते) होते थे । एक बड़ा भोज चार 'तनके' (तत्कालीन प्रचलित मुद्रा) में हो जाता था । अनेक लंगरखाने थे जहां मुफ्त खाना बांटा जाता था । सूफ़ी और शेख़ लोग भी उस युग के सस्तेपन को याद करते हैं । अलाउद्दीन शासन के विषय में बड़ा कठोर था, उसने जिस प्रकार हिसाब-किताब की जांच-पड़ताल की व्यवस्था की, उससे असामाजिक तत्वों का विनाश संभव हो गया ।

बर्नी का कहना है कि उस युग में ऐसे प्रकांड विद्वान मौजूद थे जिनकी समानता बुखारा, समरकंद, बगदाद, मिस्र, ख्वारिज्म, दमिश्क, तबरेज, रोम आदि में भी नहीं मिल सकती थी । अमीर खुसरो कहते हैं—'ज़ इल्म बा अमल देहली बुखारा' यानी क्रियामय ज्ञान में दिल्ली बुखारा के समान थी । कुछ विद्वान तो इमाम ग़ज़ाली और इमाम राज़ी के समान ज्ञान-प्रतिष्ठा रखते थे । इस्लामी संसार के सुदूर भागों से विद्वान यहां आते थे और उन महापुरुषों का शिष्यत्व ग्रहण करना अपना सौभाग्य समझते थे । जिस कृति पर यहां के विद्वान सहमति की मोहर लगा देते थे, वह विद्वत्समाज में प्रामाणिक मानी जाती थी । असामी का कहना है—''उन क्षेत्रों के मुफ़्ती (फतवा देने वाला) इस नगर (दिल्ली) के

विद्वानों से फतवा लेते हैं ।" बर्नी ने विशेष रूप से 46 विद्वानों का उल्लेख किया है जिनमें एक काजी फ़खरुद्दीन नाक़िला थे जो हज़रत महबूबे इलाही के सहपाठी थे । काजी मुहीउद्दीन काशानी, मौलाना शम्सुद्दीन यह्या और मौलाना वजीहउद्दीन पाइली उनके शिष्यों में थे ।

उस युग में कला-कौशल और व्यापार में बहुत उन्नति हुई थी । अमीर खुसरो ने दिल्ली के कलाकारों के संबंध में लिखा है—
"संसार में जो भी शिल्प कला है वे सब उसमें दक्ष हैं, बल्कि उससे कुछ अधिक ही ।"

बहुधा गैर मुल्की व्यापारियों की गतिविधियां स्थानीय व्यापारियों की चिंता का कारण बन जाती थीं ।

दिल्ली के उस ज्ञान और सांस्कृतिक वातावरण में महबूबे-इलाही ने अपने ज्ञान और अध्यात्म दोनों का सिक्का बिठा दिया था । अलाउद्दीन ख़िल्जी भले ही स्वयं उनकी सेवा में उपस्थित न हो सका, लेकिन उसकी श्रद्धा के कई प्रसंग इतिहासों में मिलते हैं । शेख़ की ख़ानक़ाह दिल्ली में अवश्य थी लेकिन वातावरण और उद्देश्य में स्वयं एक पृथक दुनिया थी । यहां न राजा आते थे, न राजाओं के पास ख़ानक़ाही लोग जाते थे । अलाउद्दीन ने वर्ग समाप्त कर दिए थे । विद्वानों को राजनीति से पृथक कर दिया था और कोई सभा-संगठन नगरों या गांवों में ऐसा न छोड़ा था जो किसी रूप में भी राजनीतिक शक्ति रखता हो, लेकिन हज़रत महबूबे-इलाही जो राजा तथा राजनीति दोनों से विरक्त थे, ऐसा ऊंचा स्थान रखते थे कि उनका आध्यात्मिक राज्य संपूर्ण देश में फैला हुआ था और अलाउद्दीन ने भी कभी उनके आध्यात्मिक मूल्यों को कम करने का प्रयत्न नहीं किया ।

बाद के राजाओं में न अलाउद्दीन ख़िल्जी की यथार्थवादिता थी, न ज्ञान-दृष्टि । उन्होंने हज़रत महबूबे-इलाही की लोकप्रियता से अनुचित मानसिक भय पैदा कर लिए और मुबारक़ ख़िल्जी तथा गयासुद्दीन तुगलक उनकी महानता को न पहचान सके ।

सूफियों की तीन परंपराएं उस काल में देश में स्थापित हो चुकी थीं— चिश्तिया, सोहरवर्दी और फिरदौसिया । सोहरवर्दिया का अधिकतर प्रभाव-क्षेत्र पंजाब तथा सिंध तक सीमित रहा । फिरदौसिया ने बिहार में काम किया, चिश्तिया परंपरा के केंद्र देश के विभिन्न भागों में स्थापित हुए । शेख़ के शिष्य दक्षिण, गुजरात, मालवा, बंगाल में अपने संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में लीन थे और ख़ानक़ाहों का जाल संपूर्ण देश में फैल गया था । दिल्ली में एक हजार मदरसे और दो

हजार ख़ानक़ाहें थीं, जिनमें ज्ञान एवं अध्यात्म की गतिविधियां जारी थीं । दिल्ली का स्वरूप एक अंतर्राष्ट्रीय केंद्र का हो गया था और संभवत: एशिया में कोई नगर इसके समान न था ।

यही थी दिल्ली की राजनीतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि जिसमें शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने अपने उपदेश की, वाणी की मसनद बिछाई थी और संसार को अपनी ओर आकृष्ट किया था ।

2. वंश, जन्म और प्रारंभिक शिक्षा

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के दादा ख्वाजा अली और नाना ख्वाजा अरब बुखारा के विध्वंस एवं विनाश के प्राणघातक दृश्यों से घबराकर भारत आए थे और कुछ दिन लाहौर ठहरकर बदायूं चले गए । मीर खोरद ने उनके विषय में लिखा है—"दोनों बुजुर्ग एक-दूसरे के भाई और मित्र थे ।" (हर दो बुजुर्ग मुसाहिब व ब्रादर यक दीगर दूदंद) 'मुसाहिब' ने ब्रादर के भाव को कुछ अस्पष्ट कर दिया है । मुसाहिब (साथी) का ब्रादर (भाई) की श्रेणी में आ जाना तो संभव है लेकिन 'भाई' का 'साथी' बन जाना कुछ बेजोड़-सी बात है । संभव है इस प्रतिकूल स्थिति में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति थी, जिसने दिलों को भाइयों के अधिक निकट कर दिया था।

ख्वाजा अरब विद्वान भी थे और धनी भी । सेवकों की बड़ी संख्या उनके पास थी । कुछ सेवक मेहनत-मजदूरी करके प्रतिदिन एक माकूल रकम लाकर देते थे, कुछ सेवक उनके धन से व्यापार करते थे । जब बुखारा की परिस्थितियां बदलीं और दंगे-फसाद की घटाएं चारों ओर घिर आईं, तो वह अपना माल-दौलत छोड़कर भारत की ओर चल पड़े । जैसे सदरुद्दीन हसन निज़ामी ('ताजुल मा'सिर' के लेखक) ने अपनी जन्म-भूमि नेशापुर को लगभग उसी समय छोड़ा था—

"प्रियजनों से पृथक होकर व्याकुल नेशापुर से रवाना हुआ । मित्रों के वियोग ने हृदय तोड़ दिया था । मित्रों से जब विदा हुआ तो आंखों से इस प्रकार अश्रु प्रवाहित हुए जैसे वर्षा में तंबू से पानी बरसता है।"

लाहौर से बाहर आने वालों के लिए एक अनिवार्य पड़ाव था, लेकिन बदायूं की ओर उनका रुख करना उनकी मानसिक दशा का द्योतक था । वह राजनीतिक केंद्र से दूर अनजान एकांत में दिन बिताना चाहते थे।

बदायूं को भारत के इतिहास में यह विशिष्टता प्राप्त है कि यहां मुसलमानों की बस्ती हिंदू राजाओं के समय में अस्तित्व में आ गई थी । मौलाना रज़ीउद्दीन सग़ानी ('मशारिक़ुल-अनवार' के रचयिता), जिनके पठन-पाठन, शिक्षा-दीक्षा का साम्राज्य एक समय में बगदाद व बुखारा तक फैल गया था, इसी मिट्टी से उठे थे । वह बदायूं पर तुर्कों का अधिकार होने से दस वर्ष पूर्व यहां पैदा

हुए । स्पष्ट है मुसलमानों की शैक्षिक तथा सांस्कृतिक संस्थाएं यहां स्थापित हो चुकी होंगी जिनमें मौलाना जैसा व्यक्ति अपनी प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त कर सका, तत्पश्चात जब बगदाद, बुखारा, नखशब, महमराह, गजानैन और गौर के दुर्भाग्यशाली व्यक्ति बदायूं के शांत, ज्ञानपूर्ण और आध्यात्मिक वातावरण की ओर प्रवृत्त हुए तो उसकी सांस्कृतिक जिंदगी में चार चांद लग गए ।

बदायूं के राजनीतिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय उस समय आरंभ हुआ जब सन् 1197-98 ई0 में कुतबुद्दीन एबक ने उसको विजित कर इस्लामी आधिपत्य में शामिल कर लिया । बदायूं की स्थिति को दृष्टि में रखकर यहां एक भारी छावनी बनाई गई । सन् 1205-6 ई० में जब सुल्तान शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी ने खोखरों को तोड़ने का इरादा किया तो बदायूं ही की सेना से उसको सहायता मिली । अल्तमश की गवर्नरी के समय में बदायूं की शानोशौकत में बहुत वृद्धि हुई । यहां की गवर्नरी एक ऐसी विशिष्टता समझी जाती थी जो राज्य के सर्वोत्कृष्ट तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों को दी जाती थी । ताजुद्दीन संजर क़तलू को बदायूं की गवर्नरी पर बधाई देते हुए अमीर खुसरो ने कहा था कि बदायूं-क्षेत्र तो आकाश से भी ऊंची मसनद है ।

बदायूं में ख्वाजा अली और ख्वाजा अरब ने किस प्रकार जीवन बिताया, इसका विवरण नहीं मिलता । लेकिन लक्षण बताते हैं कि उनका जीवन दरिद्रता और तंगी में व्यतीत हुआ होगा । यदि ऐसी दशा न होती हो शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया की माता को दरिद्रता, मुहताजी तथा फाके का सामना नहीं करना पड़ता ।

ख्वाजा अरब के एक सुपुत्र ख्वाजा अबदुल्ला और एक लड़की बीबी जुलैख़ा थीं । ख्वाजा अली के भी एक सुपुत्र ख्वाजा अहमद थे । बीबी जुलैख़ा का निकाह (विवाह) ख्वाजा अहमद के साथ हुआ, सन् 1242 ई० में इस घर में वह लड़का उत्पन्न हुआ[1], जिसको संसार शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के नाम

1. किसी समकालीन लेखक या जीवनी लेखक ने शेख़ के जन्म का सन् नहीं दिया । शेख़ केवल इतना कहा करते थे कि उनका जन्म शनिवार के दिन सफ़र महीने में हुआ था । यह सूचना प्राचीन घरानों की वृद्ध महिलाओं की विशेष अदा को प्रकट करती है । उन्हें सन् याद नहीं रहता, लेकिन दिन और महीना बिल्कुल ठीक याद रहता है । कुछ अन्य घटनाओं के आधार पर जो 'हसीरुल-औलिया' में मिलते हैं उनका जन्म वर्ष 1242 ई० निश्चित किया जा सकता है । बाबा फ़रीद का निधन 664 हिजरी में हुआ था । शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया कुल तीन बार उनकी सेवा में उपस्थित हो सके और वह भी इस प्रकार कि प्रत्येक वर्ष में एक बार जाना हुआ। स्पष्ट है शेख़ निज़ामुद्दीन बाबा फ़रीद के निधन से तीन-चार वर्ष पूर्व उनके संप्रदाय में प्रविष्ट हुए । जिस समय शेख़ अजोधन पहुंचे हैं उस समय उनकी अवस्था 20 वर्ष थी । इस आधार पर उनकी 660-61 हिजरी में अवस्था 60 वर्ष थी और उनका जन्म-वर्ष हिजरी तदनुसार 1242-43 ई० होना अनुमानत: ठीक है ।

से जानता है और लोगों के दिलों पर उसका शासन शताब्दियों से चला आता है ।

ख़्वाजा अहमद अपने बेटे के पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा की ओर ध्यान न दे सके । निज़ामुद्दीन का अभी बचपन ही था कि पिता के प्रेम से वंचित हो गए । बीबी जुलैख़ा ने अपने पति की बीमारी के दिनों में एक स्वप्न देखा था कि कोई उनसे कहता था कि अपने पति और बेटे में से किसी एक को बचा लो । बीबी जुलैख़ा ने मातृत्व की भावना के अधीन होकर अपने बेटे को बचा लिया ।[1] दिन निकला तो पति की बीमारी में वृद्धि पाई । कुछ ही दिनों में उनका अंतिम समय आ पहुंचा और वह अपने खुदा से जा मिले । बदायूं में उनका समाधि स्थल है ।

शेख़ निज़ामुद्दीन के चिंतन-अनुभूति की शिक्षा, बल्कि उनके व्यक्तित्व का संपूर्ण निर्माण उनकी मां ने किया था । उनको अल्लाह ने बड़ी योग्यता तथा सद्‌गुणों से नवाज़ा था; उनमें सच्ची धार्मिक भावना थी, खुदा पर विश्वास और आस्था थी । संयम, संतोष, आत्मनिग्रह की अपार शक्ति उनमें मौजूद थी । प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने सिद्धांतों पर इस प्रकार दृढ़ रहती थीं कि उनके साहस और निश्चय पर आश्चर्य होता था । उन्होंने शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया में शक्ति और साधना की लगन, सत्यनिष्ठा की शक्ति एवं संतोष तथा निस्पृहता का बल उत्पन्न किया था । जिस भवन की आधार शिला बीबी जुलैख़ा के पवित्र हाथों रखी गई थी उसे बाबा फ़रीद के आध्यात्मिक ज्ञान ने सच्चाई और मानव-प्रेम का भव्य महल बना दिया ।

नाम व उपाधि

हज़रत शेख़ का नाम मुहम्मद था, उपाधि निज़ामुद्दीन । मौलाना कमालुद्दीन ज़ाहिद के 'अनुमति-पत्र' और बाबा फ़रीद के 'खिलाफ़त नामा' में यही नाम अंकित है । 'फ़वाइदुलफ़वाद', 'दुरर निज़ामी', 'ख़ैरुल-मजालिस' आदि में यही नाम कुछ परिवर्तन के साथ मिलता है । कोई 'निज़ामुद्दीन' लिखता है, कोई 'निज़ामुलहक़ वशशरअ वालदैन' और कोई ''निज़ामुल्हक़ वशशरअ वलहदीवालदैन'। 'सैरुल औलिया' ने उनको 'सुल्तानुल मशायख़' की उपाधि से याद किया है। यह कहना

---

1. यह स्वप्न 'सैरुल औलिया' में अंकित है । कुछ लेखकों ने इसकी सत्यता पर संदेह प्रकट किया है, लेकिन 'दुरर निज़ामी' में लिखा है कि शेख़ कहा करते थे कि उन्होंने अपनी बहन से इसका विवरण सुना था ।

मुश्किल है कि 'औलिया' का शब्द कब उनके नाम के साथ जोड़ा गया । किसी प्राचीन वाणी-संग्रह, प्रसंग या इतिहास में यह शब्द नहीं मिलता ।

मौलाना बुरहानुद्दीन ग़रीब ने अपनी मजलिस में कहा था कि शेख़ की उपाधि 'निज़ामुद्दीन' इस प्रकार हुई कि एक दिन बदायूं में अपने मकान में बैठे थे । किसी ने आवाज दी 'मौलाना निज़ामुद्दीन' । शेख़ ने कुछ ऐसा अनुभव किया कि उनको ही पुकारा जा रहा है । बाहर आए तो एक व्यक्ति ने 'अस्सलाम अलैकुम मौलाना निज़ामुद्दीन' कहा । उस दिन के पश्चात शेख़ निज़ामुद्दीन की उपाधि से प्रसिद्ध हो गए । लेकिन 'सैरुल औलिया' में जिस प्रकार उनकी माता 'निज़ामुद्दीन' कहकर संबोधित करती हैं उससे अनुमान होता है कि संभवतया यह उपाधि प्रारंभिक काल में ही उनको दी गई थी और घर वाले भी उनको इसी उपाधि से पुकारने लगे थे । अमीर खुसरो ने इसकी कवित्वमय सार्थक व्याख्या इसी प्रकार की है —

"तूने शेख़ फ़रीद के शिष्यों की लड़ी को सुव्यवस्थित किया है, इसी कारण तेरी उपाधि 'निज़ाम' हुई है ।"

महबूबे-इलाही की उपाधि शेख़ को लोगों के प्रति दुखानुभूति की स्वीकृति में, इस हदीस की रोशनी में दी गई थी—

"खुदा के सब प्राणी उसका कुटुंब हैं और वह खुदा की सबसे अधिक भलाई करता है ।"

और उनके समकालीन भी उनको इसी उपाधि से स्मरण करते थे । अमीर खुसरो लिखते हैं—

"जिन (प्रेत) और इंसान दोनों पर निज़ामुद्दीन महबूबे इलाही शासन करते थे ।"

इतिहास में 'निज़ामी' उपनाम का प्रयोग सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने किया था । 'मतलाउल-अनवार' में वह कहते हैं—"मुझे उनका दास होने का गर्व है, मेरा स्वामी निज़ाम है और मैं 'निजामी' हूं ।"

बदायूं में शिक्षा

प्रतिकूल परिस्थितियों के होने पर भी बीबी जुलैख़ा ने अपने पुत्र की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया । बदायूं के अध्यापकों में केवल दो नाम मिलते हैं; (1) शादी मक़री, (2) मौलाना अलाउद्दीन उसूली ।

दोनों के व्यक्तित्व कुछ दृष्टि से असाधारण और अद्वितीय थे । शादी मक़री एक हिंदू के सेवक (दास-गुलाम) रह चुके थे । लाहौर के एक प्रसिद्ध

विद्वान ख्वाजगी मक़री के शिष्य थे । उनके विषय में यह प्रसिद्ध था कि जिसको थोड़ा-सा भी 'पारा' (क़ुरआन का एक अध्याय) पढ़ा दिया उसने कभी न कभी क़ुरआन कंठस्थ कर लिया । शेख़ निज़ामुद्दीन ने उनसे एक 'पारा' पढ़ा था । लेकिन कहा करते थे कि इसी का वरदान था कि आगे चलकर उनको क़ुरआन मजीद कंठस्थ हो गया ।

मौलाना अलाउद्दीन असूली का संसार ही पृथक था । वह महान मनीषी थे, लेकिन फाका और दरवेशी का जीवन व्यतीत करते थे । कभी कभी तीन तीन दिन तक खाने को कुछ नहीं मिलता था, भूख-प्यास से गला सूख जाता था, लेकिन प्रतिष्ठा के अचल गिरि बने शिक्षा देते थे । यदि किसी की भेंट कभी स्वीकार करते तो अपनी तुरंत आवश्यकता की सीमा तक । शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहलवी का कहना है कि एक दिन नाई के सामने उन्होंने पगड़ी उतारी तो उसमें खली के टुकड़े निकले । नाई ने मौलाना की दरिद्रता का वर्णन बदायूं के धनी लोगों से किया । किसी व्यक्ति ने हजार तनके, कुछ मन गेहूं और कुछ घी उनकी सेवा में भेजा, लेकिन मौलाना ने स्वीकार नहीं किया । शेख़ निज़ामुद्दीन पर मौलाना असूली के व्यक्तित्व और उनके ज्ञान-सिंधु का बहुत प्रभाव था । वह कुछ हदीसें उनके संदर्भ से वर्णन करते थे और उनके निस्पृह, संतोषपूर्ण जीवन और विद्वानोचित प्रतिष्ठा दोनों मान्य थे । मौलाना असूली की शिक्षा-पद्धति यह थी कि कभी पुस्तक स्वयं पढ़ते थे, कभी शिष्य से पढ़वाते थे, कभी शुद्ध करते जाते और साथ में अर्थ की व्याख्या भी करते थे ।

मौलाना असूली का जीवन सूफ़ियों की आत्मविजय तथा इंद्रियनिग्रह का उत्तम दृष्टांत है । आरंभिक काल में निरुद्देश्य घूमते हुए एक मकान की चौखट पर पहुंचे । यहां शेख़ जलालुद्दीन तबरेज़ी ख़लीफ़ा शेख़ शहाबुद्दीन सोहरवर्दी के यहां ठहरे थे । शेख़ तबरेज़ी की दृष्टि उन पर पड़ी और न मालूम क्या छिपी हुई योग्यताएं उनमें देखीं कि उनको अंदर बुलाया, अपना कुरता प्रदान किया और निरुद्देश्य जीवन को सोद्देश्य बना दिया । मौलाना असूली विद्यार्जन की ओर प्रवृत्त हुए और कुछ दिनों की मेहनत और परिश्रम के पश्चात विद्वानों में गिने जाने लगे ।

जब शेख़ निज़ामुद्दीन ने पुस्तक समाप्त की तो मौलाना असूली ने कहा कि अब सम्मान की पगड़ी खरीदनी है, लेकिन शेख़ के पास पगड़ी खरीदने के लिए कुछ पास नहीं था, अपनी माता से उन्होंने इस परेशानी का वर्णन

किया । उन्होंने रुई खरीदी और धुनिए से शीघ्र धुनवाई, फिर आधी स्वयं तथा आधी दासी से कतवाई । फिर एक जुलाहे को जो पड़ोस में रहता था, सूत दिया और उसे शीघ्र पगड़ी तैयार करने को कहा । उसने सब काम छोड़कर दो-तीन दिन में कपड़ा बुनकर दे दिया, उसे कलफ नहीं दिया, बस धुलवाकर सौंप दिया । मां ने इस पगड़ी के साथ कुछ पैसे रखे ताकि खाने की कोई चीज खरीदकर बांटी जा सके और मौला असूली की सेवा में भेजी । मौलाना ने कुछ पैसे अपने पास से डालकर खाने का प्रबंध किया और अली मौला को, जो बदायूं के प्रसिद्ध महात्मा थे, इस आयोजन में शामिल होने का निमंत्रण दिया । अली मौला भी शेख़ जलालुद्दीन तबरेज़ी की पारख-दृष्टि के अधीन हो चुके थे । अहीर-वंश से थे, दही का मटका सिर पर रखे लिए जा रहे थे कि शेख़ तबरेज़ी की दृष्टि पड़ी और वह अपने विगत जीवन के पापों से तौबा कर लज्जित होकर शेख़ के शिक्षा-आंचल से बंध गए और आत्मज्ञान के संसार में ऐसी लोकप्रियता प्राप्त की कि बदायूं में लोगों के श्रद्धा-केंद्र बन गए ।

पगड़ी का एक कोना मौलाना असूली ने अपने हाथ में लिया और दूसरा अली मौला को दे दिया । दोनों ने मिलकर शेख़ निज़ामुद्दीन के सिर पर पगड़ी बांधी । शेख़ निज़ामुद्दीन प्रेमातिरेक एवं श्रद्धावेश में आकर अपने गुरु के पैरों में गिर गए । अली मौला यह प्रेम और शिष्टाचार देखकर अनायास पुकार उठे—''अरे मौलाना, यह बड़ा हाइसी ।'' (अरे मौलाना, यह बड़ा होगा) जब उनसे पूछा गया कि किस आधार पर यह भविष्यवाणी कहते हैं, तो फरमाया—'जो मुंडासा बांधे सो पाइन पसरे'—यानी जो सिर पर पगड़ी रखता है वह किसके पांव पड़ता है । दूसरे उसकी पगडी में रेशम की मिलावट नहीं है । यह भी उसके बड़े होने का प्रतीक है । शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया की दृष्टि में इस आयोजन का कोई भी महत्व हो, उसकी मां के लिए वर्षों का त्याग-तप का फल और उसके स्वप्न का फल था ।

मौलाना असूली इस्लामी धर्मशास्त्र तथा हदीस के विद्वान थे । सूफ़ीमत से शायद उनको दिलचस्पी न थी और किसी के शिष्य भी नहीं थे । शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया कहा करते थे कि यदि यह किसी के शिष्य हो गये होते तो महानात्मा होते ।

बदायूं में शेख़ निज़ामुद्दीन का जीवन

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया को अपने जन्मस्थान बदायूं से अपार प्रेम था । जब

दिल्ली की सभाओं-मजलिसों का वर्णन करते थे तो ऐसा प्रतीत होता कि यादों के चिराग जल रहे हैं । वहां की प्रत्येक चीज को याद करते, विद्वान, औलिया, कोतवाल, उपवन, फल-फूल, सरोवर का वर्णन करते और काल तथा स्थान के बंधन तोड़कर उस पृथ्वी पर पहुंच जाते जहां उनके मित्र ख्वाजा अहमद उनसे शरीअत के प्रश्न मालूम कर रहे हैं, जहां शेख़ शाही चमकदार बाल वाले अपने श्याम बदन से सामने उपस्थित हैं, और श्रद्धालुओं का एक समाज उनके सामने एकत्रित है । जहां ख्वाजा अज़ीज़ कोतवाल आमों के बाग में अतिथियों की आवभगत में लीन हैं । यह और इसी प्रकार के अनेक चित्र एक एक करके उनके हृदय-पटल पर प्रकट होते थे, और वह कुछ देर के लिए अपने जीवन के गति-चिह्नों की खोज में लग जाते थे । बदायूं की कुछ घटनाओं ने उनके चिंतन-लोक पर गहरा प्रभाव डाला था । वह एक दरवेश का वर्णन करते जाते थे जो सदैव उपवास रखते थे, और कभी अतिथि के बिना भोजन न करते थे । काज़ी कमालुद्दीन जाफ़री से शेख़ जलालुद्दीन तबरेज़ी ने जब यह फरमाया कि क्या काज़ी को नमाज पढ़नी आती है, तो शेख़ के हृदय ने इस वाक्य की गहनता को समझ लिया था । वह मौलाना सराजुद्दीन तिरमिज़ी के एक स्वप्न का वर्णन करते थे कि उन्होंने देखा कि मक्का-शरीफ़ से मुर्दे कब्रों से बाहर भेजे जा रहे हैं और बाहर से दूसरे मुर्दे लाकर दफन किए जा रहे हैं और इससे यह फल निकाला था कि पूज्य मक्का में सत्कर्मों द्वारा पहुंचा जा सकता है । जितने प्रसंग उन्होंने बदायूं के बताये उनके प्रभाव का प्रतिबिंब उनके जीवन में परिलक्षित होता है । तथ्य यह है कि उनके जीवन के चिंतन और अनुभूति की बुनियाद बदायूं में ही पड़ी थी ! मां ने चरित्र बनाया, मौलाना असूली ने ज्ञान-दीक्षा दी, बदायूं के वातावरण ने वह दृष्टि उत्पन्न की जो जीवन भर उनके साथ रही और यहां के सूफियों से वह अपने जीवन में निरंतर ज्ञानालोक प्राप्त करते रहे । दिल्ली को छोड़कर जहां अपने जीवन के पचास वर्ष व्यतीत किए थे, बदायूं का वर्णन उसके प्रवचनों में सबसे अधिक आया है, यहां तक कि अजोधन का वर्णन बदायूं से कम है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि बदायूं में वह केवल अपने पिता से वंचित नहीं हुए थे, बल्कि वंश में कोई बुजुर्ग ऐसा शेष नहीं रहा था जो कुछ भी आर्थिक सुविधा उनको पहुंचा सके । उनकी विधवा, जो साहस और दृढ़ता का स्तंभ, तथा संतोष-निस्पृहता की साकार प्रतिमा थीं, उन प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना जिस प्रकार करती रहीं वह अपनी मिसाल आप है । उन्होंने अपने बेटे के हृदय

में दरवेशी जीवन के महत्व और महानता को अंकित कर दिया था । शिक्षा से भी उनको अति रुचि थी । जब शेख़ निज़ामुद्दीन ने दिल्ली जाकर समकालीन विद्वानों से लाभान्वित होने की इच्छा प्रकट की तो वह खुशी से सहमत हो गईं ।

3. दिल्ली में शिक्षा की समाप्ति और दरवेशी जीवन

संभवत: सुलतान नासिरुद्दीन महमूद का शासनकाल था जब शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया अपनी मां और बहन के साथ दिल्ली पहुंचे। उस समय दिल्ली का महत्व अंतर्राष्ट्रीय विद्या-केंद्र का था। भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त मध्य एशिया और ईरान के सैकड़ों विद्वानों से भली-भांति लाभ उठाया था, कुछ की सेवा में मौजूद होकर उनके ज्ञान-चमत्कारों को समझने का प्रयत्न किया। इस प्रकार उसका ज्ञान-सिंधु व्यापक से व्यापकतर होता गया और उनको भारत ही नहीं बल्कि भारत के बाहर के ज्ञान और धार्मिक प्रवृत्तियों से भी परिचय हो गया। उस समय वाद-विवाद-तर्क, शिक्षा का अनिवार्य अंग था और अध्यापक के निरीक्षण में यह कार्य बहुत नियमपूर्वक होता था। 'सादी' ने 'मदरसा निजामिया' में अपने समय की शिक्षा का वृत्तांत लिखा है—"मैं 'मदरसा निजामिया' में शिक्षा प्राप्त करता था, वहां रात और दिन चर्चा एवं उपदेशों में व्यतीत होते थे।"

यह शिक्षा-पद्धति दिल्ली में थी। अत: शेख़ निज़ामुद्दीन ने अपने व्यापक अध्ययन और बुद्धिमता के द्वारा उन ज्ञान-सभाओं में अपनी योग्यता का ऐसा सिक्का बिठाया कि वह 'निज़ामुद्दीन बहास' (वादविवादी निज़ामुद्दीन) और 'निज़ामुद्दीन महफिल शिकन' (सभा भंग करने वाला निज़ामुद्दीन) के नाम से प्रसिद्ध हो गए लेकिन इन शास्त्रार्थ और वाद-विवाद की योग्यताओं से उनको अपने जीवन में बहुत कम काम पड़ा। वह जीवन भर वाद-विवाद से बचते रहे और अपने शिष्यों तथा अनुयायियों को भी उससे बचने का आदेश देते रहे। कहा करते थे कि यदि मनुष्य का जीवन उन सिद्धांतों का दर्पण है जिनका उपदेश वह दूसरों को करता है तो यह मौखिक उपदेश से कहीं अधिक प्रभावशाली है।

दिल्ली में जिन विद्वानों से उन्होंने ज्ञान-क्षेत्र में लाभ उठाया वे ये थे—

(1) ख्वाजा शम्सुद्दीन (शम्सुल मलिक)

(2) मौलाना अमीनुद्दीन—हदीस

(3) मौलाना कमालुद्दीन ज़ाहिद

संभव है कि इनके अतिरिक्त और भी हों जिनके उल्लेख का कोई अवसर न आया हो। एक अध्यापक का नाम नहीं बताया लेकिन उनकी एक अदा से—मुद्रा से इतने निराश हुए कि फिर उनके पास नहीं गए। उन अध्यापक के बेटे को किसी गांव का काजी बना दिया गया था। वह काजी की वेशभूषा धारण कर पिता के पास आया। पिता उसे देखकर बहुत खुश हुए और कहा—"वर्षों मैंने इसकी कामना की और आज खुदा ने तुझको प्रदान की।" शेख़ निज़ामुद्दीन ने उनकी यह बात सुनकर मन में कहा कि उस व्यक्ति को एक गांव की जजी से इतनी अधिक खुशी हुई है तो उसका ज्ञान मुझ पर क्या प्रभाव डालेगा। इसके पश्चात उनके पास जाना छोड़ दिया।

शम्सुल मुल्क मस्तूफ़ी मुमालिक (हेडमुनीम, हेड एकाउंटेंट) के पद पर नियुक्त रह चुके थे। उनका नियम था कि जब कोई शिष्य अनुपस्थित रहता तो हास्यपूर्वक फरमाते—"मैंने ऐसा क्या किया जो तुम नहीं आए, क्या फिर वही करूं।" लेकिन शेख़ निज़ामुद्दीन के साथ उनका व्यवहार अलग था। उनको सबसे श्रेष्ठ स्थान पर बिठाते थे और यदि कभी अनुपस्थित रहते तो यह शेर पढ़ते थे—

आख़िर कम अज़ां कि गाह गाहे
आई वब् माकनी निगाहे

(कभी कभी हमारी दृष्टि को भी तुम्हारी दृष्टि से दो-चार होने का अवसर मिलना चाहिए।)

वह अपने शिष्य से जिस प्रकार व्यवहार करते थे उससे अनुमान होता था कि उनकी दूर-दृष्टि ने उनके उज्जवल भविष्य की झलक देख ली थी। मौलाना शम्सुल मुल्क की ज्ञान-प्रतिष्ठा तो उन्हें मान्य थी लेकिन धन-मोह को उनकी दुर्बलता समझते थे और कहते थे कि यदि दानशीलता और उदारता उनमें होती तो वह उस नगर में बेजोड़ थे। अंतिम अवस्था में उन्हें एक कठिनाई का सामना करना पड़ा। बादशाह ने उनकी धन-संपत्ति को जब्त करने का आदेश दे दिया। जिस समय अधिकारी उनके घर पहुंचे तो शेख़ निज़ामुद्दीन वहां उपस्थित थे। संपत्ति से वंचित होना उनकी आत्मा के लिए कष्टदायक हो रहा था और वह बहुत चिंतित दिखाई देते थे। शेख़ निज़ामुद्दीन ने गुरु के सम्मान की रक्षा करते हुए उपदेश देने से घृणा की, लेकिन अत्यंत शिष्टता से इतना अवश्य निवेदन किया कि संसार के प्रति मोह खुदा और मनुष्य के मध्य एक पर्दा है। यदि खुदा की यही इच्छा है तो भाग्य पर विश्वास कीजिए और दुख तथा खेद न कीजिए। मौलाना ये बातें सुनकर शांत हो गए। लेकिन जब शेख़ निज़ामुद्दीन

उनसे जाने की आज्ञा लेने लगे तो फरमाया तुम यह ध्यान रखना कि मेरी यह संपत्ति फिर मेरे पास वापस आ जाए और वियोग की पीड़ा न दे ।

'दुरर निज़ामी' में हदीस के विद्वान मौलाना अमीनुद्दीन का नाम आया है लेकिन उनके विषय में कोई विवरण नहीं मिलता ।

दिल्ली में हज़रत महबूबे-इलाही के सर्वश्रेष्ठ गुरु ज्ञान के सिंधु, संयमी मुहम्मद-बिन-अहमद बिन मुहम्मद अल-मारीकी थे जो मौलाना कमालुद्दीन ज़ाहिद के नाम से विख्यात थे । मारीकला रावलपिंडी से तक्षिला जाते हुए 16 मील की दूरी पर दो पर्वतों के मध्य एक दर्रा है । मौलाना की जन्मभूमि वही थी। पांडित्य के साथ इंद्रिय-निग्रह और निस्पृहता भी प्रसिद्ध थी । बलबन ने शाही इमामत (बादशाह की या शाही मस्जिद में नमाज पढ़ाना) का पद स्वीकार करने की प्रार्थना की तो फरमाया —

''हमारे पास नमाज के अतिरिक्त और क्या है ? क्या बादशाह इसको भी लेना चाहता है ?'' बलबन यह उत्तर सुनकर अवाक रह गया और मौलाना को अति क्षमायाचना के साथ जाने की आज्ञा दे दी ।

दिल्ली की एक मस्जिद में जो नजमुद्दीन अबूबकर अल-तलवासी की मस्जिद कहलाती थी, मौलाना ज़ाहिद हदीस की शिक्षा देते थे । शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने उनसे 'मशरिकुल-अनवार' की शिक्षा ली थी । सौभाग्य से मीर खोरद ने 'सैरुल औलिया' में वह आदेश-पत्र उद्धृत कर दिया है जो मौलाना ने शेख़ निज़ामुद्दीन को प्रदान किया था । उसकी तिथि 679 हिजरी तदनुसार सन् 1280 ई० है, जिसका अर्थ है कि जिस समय यह प्रमाण पत्र मिला उस समय शेख़ की अवस्था 39-40 के लगभग थी और वह अपने अध्यात्म-ज्ञान से समकालीनों को प्रभावित कर चुके थे । यही कारण है कि आदेश-पत्र में अंकित है—

''ज्ञान में वह (शेख़ निज़ामुद्दीन) पराकाष्ठा को पहुंचे थे.......
और ज्ञान-श्रेणी में विशेष चमत्कार और अधिकार प्राप्त है,
और महापुरुषों को प्रिय तथा यशस्वियों का चहेता है ।''

यह सत्य है कि जिन अध्यापकों के पांडित्य और पावनता का सबसे अधिक प्रभाव शेख़ निज़ामुद्दीन के मन-मस्तिष्क पर पड़ा वह बदायूं के मौलाना अलाउद्दीन असूली और दिल्ली के मौलाना कमालुद्दीन ज़ाहिद थे । इन दोनों में कुछ बातें समान थीं जो शेख़ निज़ामुद्दीन को अतिप्रिय थीं—(1) संतुष्ट और निस्पृही जीवन (2) कर्ममय ज्ञान (3) दीनता तथा नम्रता ।

मकान की खोज

इस प्रारंभिक काल में शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया को जो सबसे बड़ी कठिनाई सामने आई वह निवास-स्थान से संबंधित थी । जल्दी जल्दी मकान बदलने से वह परेशान हो गए और दिल्ली छोड़कर दूसरे स्थान पर चले जाने का इरादा करने लगे थे । उस समय जिन जिन क्षेत्रों में रहना पड़ा उनका विवरण यह है—

(1) सराय मियां बाजार जिसे सराय नमक भी कहते थे, वहां मां और बहन को ठहराया और उस सराय के सामने कमानें, धनुष बनाने वालों के मकान में निवास किया ।

(2) सराय नमक में अमीर ख़ुसरो के नाना रावत अर्ज़ के मकान में ठहरे । यह मकान दिल्ली-दुर्ग के समीप था ।

(3) छप्परदार की मस्जिद में, सिराज वक़ाल के घर के आगे ।

(4) सअद काग़ज़ी के मकान में ।

(5) सराय रकाबदार के मकान में ।

(6) शादी गुलाबी के मकान में ।

(7) शम्सुद्दीन शराबदार के मकान में ।

अंत में तंग आकर किसी गांव में जाकर रहने का इरादा किया, अत: बसनाला गए । यह पर्वत-अंचल में स्थित था । तीन दिन वहां रहे, लेकिन कोई मकान न मिला—न किराये पर, न गिरवी । विवश होकर लौट आए । एक दिन जसरत बाग में, जो हौज़ रानी के निकट था, इबादत (उपासना) में लीन थे और अल्लाह से लौ लगाई थी कि जहां का संकेत होगा वहां चला जाऊंगा । ग़यासपुर जाने का आदेश हुआ, परंतु वह ग़यासपुर से अनजान थे । अपने एक मित्र नकीब नेशापुरी से इस स्थान का पता लगाने के लिए उसके मकान पहुंचे । ज्ञात हुआ कि ग़यासपुर गया हुआ है, यह और भी परोक्ष समर्थन था । इसलिए खोजते-खोजते ग़यासपुर पहुंचे । यह एक अप्रसिद्ध, मामूली-सा गांव था । वहीं यात्रा का सारा सामान खोल दिया और जो व्यक्ति वर्षों एक मकान से दूसरे मकान, एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले में प्रस्थान करते हुए थक चुका था, उसे एक ऐसा आवास मिल गया जहां से फिर कहीं जाने का अवसर नहीं आया । परंतु ग़यासपुर के भाग्य में गुमनामी न थी । जब कीक़बाद ने कैलोकहरी में राजमहलों का निर्माण कराया और वहां रहना आरंभ किया तो ग़यासपुर में भी भीड़ लगने लगी । एक समय शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने यह भी सोचा कि बिहार में शेख़ ख़िज्र पारा दोज़की (ख़ीमा सीने वाला) ख़ानक़ाह

में बच्चों को शिक्षा देने की नौकरी कर लें, लेकिन वहां से आने वाले लोगों से जब ज्ञात हुआ कि शेख़ ख़िज्र, उनसे परिचित हैं तो वहां का इरादा भी त्याग दिया ।

ऐसा प्रतीत होता है कि उनको शिक्षा-दीक्षा के भावी उत्तरदायित्व का आभास हो चुका था और वह उसके अनुसार अपने निवास-स्थान का प्रबंध करना चाहते थे । एक बार ऐसे स्थान से जाना हुआ जहां छोटे छोटे छप्पर थे । हृदय में विचार आया कि उन्हें इस प्रकार के छप्पर मिल जाएं तो अच्छा हो । अभिप्राय यह है कि अभी स्थायी आवास के विषय में चित्त में शांति नहीं थी कि एक साधारण-सा व्यक्ति आया । देखते ही एक शेर पढ़ा जिसका भावार्थ यह था—

"जिस दिन तू दूज का चांद बनकर उभरा था तुझको ज्ञात न था कि संसार की दृष्टि तुझ पर पड़ेगी । आज जबकि तेरे लंबे केशों ने—जुल्फ ने लोगों के दिल को मोह लिया है, एकांत कोने में बैठने से क्या लाभ ?"

उस व्यक्ति ने यह भी कहा कि मनुष्य को क़यामत के दिन पैगंबर मुहम्मद साहब के समक्ष लज्जित होने का सामान नहीं करना चाहिए । बल और साहस इतना कि लोगों की भीड़ होने पर भी खुदा के स्मरण में लीन रहे—यह किसी व्यक्ति का परामर्श था या कोई वाणी थी या स्वयं उनकी अंतरात्मा की आवाज थी— इस प्रकार उसने शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के जीवन का रुख और उनका निवास-स्थान निश्चित करा दिया । उन्होंने ग़यासपुर में रहकर लोगों को मानव-प्रेम तथा ईश्वर-भक्ति की शिक्षा देने का निर्णय किया ।

दरवेशी और उपवास

दिल्ली के आरंभिक काल में यह नियास शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के लिए अत्यंत परीक्षा की घड़ियों में था । आय के साधन अप्राप्य, निवास-स्थान की कठिनाई, विद्यार्थी-जीवन, मां तथा बहन का उत्तरदायित्व । उन्होंने उन परिस्थितियों का सामना बड़े साहस और दृढ़ता से किया । स्वयं एक बार अपने उसी समय के जीवन के विषय में बताया कि दिल्ली में एक 'जीतल' (एक सिक्का) के मन भर खरबूजे मिलते थे, परंतु फसलें की फसलें बीत जातीं और एक फांक भी खाने को न मिलती । एक जीतल की दो सेर रोटियां मिलती थीं, लेकिन घर में एक जीतल भी न होता था । मां, बहन और स्वयं इसी दरिद्रता-दरवेशी में जीवन बिताते थे । बहुधा जब मदरसे से घर वापस आते तो मां कहती— 'निज़ामुद्दीन आज हम खुदा के मेहमान हैं ?'

तत्पश्चात जब जीवन में उनकी परिस्थितियां बिल्कुल बदल गई थीं और प्रातकाल से लेकर रात तक भेंट, उपहारों का क्रम न टूटता था, तो वह अपनी आरंभिक दशा पर विचार करके एक आध्यात्मिक आनंद का अनुभव करते थे और उन दिनों का स्मरण करते थे जब उनकी मां ख़ुदा का मेहमान होने की शुभ सूचना देती थीं ।

जिस समय दरवाजा मंदाह के पास रहते थे, उस समय एक बार खाने को तीन दिन तक कुछ न मिला, फिर संयोग से एक व्यक्ति खिचड़ी का प्याला लाया और उन्हें देकर चला गया । फरमाते थे कि जो स्वाद उस रात खिचड़ी खाने में आया, वह फिर कभी न मिला । उस समय कुछ दिनों तक झोली भी मकान पर लटकी रही, जो चाहता उसमें कुछ खाने की चीज डाल जाता था । इफ्तार (रोज़ा खोलने) के समय उसको हिलाकर टुकड़े निकाल लिए जाते और उन पर ही सबका भरण-पोषण होता। परंतु जब परीक्षा का और खुदा की शिक्षा का प्रसंग चल रहा हो तो उसमें भी सुविधा कहां प्राप्त हो सकती थी । एक दिन झोली से सूखे टुकड़े निकालकर दस्तरखान (वह कपड़ा जिस पर रखकर खाना खाते हैं) पर रखे गए थे और इफ्तार की प्रतीक्षा हो रही थी, अचानक एक दरवेश उधर निकला और यह समझकर कि यह बचे हुए टुकड़े हैं, सबको समेटकर रवाना हो गया । शेख़ मुस्कराए और बोले—''अभी हमारे काम में कुछ कमी है जो हमें भूखा रखा जा रहा है ।''

शेख़ निज़ामुद्दीन को दरिद्रता-दरवेशी में आध्यात्मिक आनंद अनुभव होने लगा था । यदि कुछ दिनों का अन्न घर में होता और फाके की नौबत न आती तो प्रतीक्षा करने लगते कि किस दिन यह अन्न समाप्त होगा और मां कहेगी कि आज हम खुदा के मेहमान हैं ।

साध्वी मां

दिल्ली में उनकी मां के भाग्य में दरिद्रता और फाके ही लिखे थे । ऐसा अनुमान है कि ऊपर की आय—भेंट-उपहार आदि का क्रम आरंभ होने से पूर्व ही उनका देहांत हो गया था । लेकिन उनकी आध्यात्मिक दृष्टि ने अपने पुत्र के उज्ज्वल भविष्य की झलक देख ली थी । बहुधा उनके पैरों को देखकर कहती थीं—''निज़ाम ! मैं तुझमें सौभाग्य और खुशकिस्मती का लक्षण देखती हूं, तू किसी समय बड़ा सौभाग्यशाली और खुशकिस्मत होगा ।''

कभी शेख़ कहते कि अब तक तो यह सौभाग्य प्रकट नहीं हुआ, अब कब होगा ? फरमातीं—''घबराओ नहीं, इसका प्रभाव प्रकट होगा, लेकिन उस

समय, जब मैं इस संसार से उठ जाऊंगी ।"

मीर ख़ोरद ने लिखा है कि ऐसा ही हुआ । वह अत्यंत धार्मिक स्वभाव की नारी थीं । जब कोई समस्या होती, अल्लाह की ओर ध्यान करतीं । एक बार दासी भाग गई तो उसकी वापसी के लिए प्रार्थना की और कहा कि जब तक दासी वापस न आएगी मैं सिर पर दुपट्टा न रखूंगी । थोड़ी देर बाद वह दासी वापस आ गई ।

शेख़ निज़ामुद्दीन भी अपनी मां की प्रार्थना-दुआ के प्रभाव में विश्वास रखते थे । कहा करते थे—जब कभी उनसे प्रार्थना कराई, सप्ताह के भीतर वह कामना पूर्ण हो गई । उनके देहांत के पश्चात भी कब्र पर जाकर दुआ मागते थे । जब मुबारक ख़िल्जी की यातनाओं से तंग हुए तो उनके मज़ार पर दुआ मांगी कि यदि मामला, अभियोग का एकतरफा निर्णय न हुआ तो भविष्य में यहां नहीं आऊंगा ।

'जमादिल आख़िर' (इस्लामी महीना) की चांद रात थी । शेख़ ने नया चांद की मुबारक अर्ज़ की तो मां ने फरमाया—"निज़ाम ! अगले महीने की प्रथम तिथि को किसकी कदमपोशी करोगे और किसको नए चांद की मुबारक दोगे ।" यह वाक्य सुनकर शेख़ फूट-फूटकर रोने लगे । फिर बड़े धैर्य के साथ कहा—"सेव्या ! मुझको किसको सौंपती हैं ?" फरमाया—"इस बात का उत्तर प्रात: दूंगी ।" फिर आदेश दिया कि रात को शेख़ नजीबुद्दीन मुतवक्किल के घर पर सो रहो । अभी प्रात: नहीं हुआ था कि दासी दौड़ी हुई आई और कहा कि मां बुलाती हैं । जब मां के पास गए तो मां ने मालूम किया—"तुम्हारा दाहिना हाथ कौन-सा है ?" वह हाथ पकड़कर फरमाया—"खुदा, मैं इसे तेरी सुपुर्दगी में देती हूं ।" इतना कहा और उनकी आत्मा भौतिक पिंजरे से उड़ गई । शेख़ कहा करते थे कि यदि वह हीरे-जवाहरात से भरा मकान भी छोड़ जातीं तो इतनी खुशी न होती जितनी उससे हुई—

जिंदगी तेरी मेहताबसे ताबिंदा तर
खूब तर था सुबह के तारे से भी तेरा सफ़र

बीबी जुलैख़ा का मज़ार (समाधि) अधचनी गांव में है जो कुतुबमीनार से एक मील की दूरी पर सड़क के निकट स्थित है । दिल्ली में इस दरगाह को 'बीबी नूर' की दरगाह कहते हैं ।

4. बाबा फ़रीद के कल्याणकारी आस्ताने पर

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया का बचपन था, अवस्था मुश्किल से 12 वर्ष की होगी । बदायूं की एक पाठशाला में पढ़ रहे थे । एक व्यक्ति अबूबकर ख़रात उनके गुरु से मिलने आया और अपनी मुल्तान की यात्रा का वृत्तांत सुनाने लगा । उसने शेख़ बहाउद्दीन ज़िक्रिया की ख़ानक़ाह के आध्यात्मिक वातावरण का वर्णन किया कि वहां दासियां भी आटा पीसते हुए जिक्र (खुदा का स्मरण) करती रहती हैं । उसका कोई विशेष प्रभाव शेख़ निज़ामुद्दीन के हृदय पर न हुआ, फिर उसने बाबा फ़रीद गंजशकर की सेवा में उपस्थिति का वर्णन किया और कहा कि दीन का एक राजा ऐसा ऐसा देखा । बाबा साहब का नाम सुनकर शेख़ निज़ामुद्दीन का हृदय स्वयंमेव उधर आकृष्ट हुआ और शांतिपूर्वक हृदय में एक ऐसी चिनगारी जल उठी जिसने आगे चलकर प्रेमाग्नि का रूप धारण कर लिया । प्रत्येक नमाज के पश्चात दस दस बार 'शेख़ फ़रीद', 'मौलाना फ़रीद' कहने लगे । उस श्रद्धा-प्रेम का अनुमान जब मित्रों को हुआ तो उनका नियम हो गया कि जब शेख़ निज़ामुद्दीन को किसी बात पर शपथ दिलाना चाहते तो कहते शेख़ फ़रीद की शपथ खाओ ।

शेख़ फ़रीदुद्दीन मसऊद गंजशकर (1175-1265) ई० उस युग के अत्यंत उच्चकोटि के शेख़ तरीकत थे । अजोधन में उनकी ख़ानक़ाह शिक्षा-दीक्षा का गहवारा और आदेशोपदेश का केंद्र था । देश के सुदूर क्षेत्रों से लोग आध्यात्मिक शांति की खोज में यहां एकत्रित होते थे । शेख़ की आध्यात्मिक शिक्षा का केन्द्र 'जमाअत खाना'—सभाभवन था जो कच्चा बना हुआ था । स्थान स्थान पर स्तंभ थे जिनके पास खलीफा और शिष्य अपनी सारी काइनात—वस्त्र, पुस्तकें, माला (तस्बीह) आदि के साथ पृथ्वी पर—फर्श पर बैठे ईश्वर-स्मरण में लीन रहते थे । सभाभवन के कुछ लोग वन से लकड़ी चुनकर लाते, कुछ कुएं से पानी भरकर ले आते, कुछ वन से पीलू और डीला तोड़कर एकत्रित कर देते । इस प्रकार पीलू और डीला की एक हंडिया तैयार हो जाती जिसको सब अत्यंत शुक्र व संतोष से खाते और दरिद्रता में आध्यात्मिक आनंद अनुभव करते । इस सभाभवन

में कुछ लोग जीवन की समस्त सुविधाएं छोड़कर एकत्रित हुए थे । सैयद महमूद किरमानी किसान के धनी व्यापारी थे । एक दिन सभाभवन आए और ऐसा मन लगा कि फिर यहीं के हो गए । उनकी पत्नी बीबी रानी मुल्तान के टकसाल अफसर की बेटी थीं । उन्होंने भी अपने पति के साथ यहां रहना चाहा और सभाभवन के लोगों की देखभाल बिल्कुल उस प्रकार आरंभ कर दी जिस प्रकार एक बहन भाइयों का काम करती है । ज़ियाउद्दीन बर्नी ने बाबा साहब के विषय में लिखा था कि वह संसार के कुतब (कुतब आलम, वह मुसलमान ऋषि जिसके अधीन एक बड़ा क्षेत्र होता है) और विश्व-आश्रम का महत्व रखते थे और इस देश के रहने वालों को उन्होंने अपने कृपांचल में ले रखा था ।

शेख़ निज़ामुद्दीन के सामने ऐसी घटनाएं पेश आईं कि शेख़ फ़रीद से उनका प्रेम बिना देखे बढ़ता ही रहा । 15-16 वर्ष की आयु में जब दिल्ली के लिए प्रस्थान किया तो अजीज एवज़ नामक एक बुजुर्ग उनके साथ थे । मार्ग में जहां कहीं चोरों का भय या हिंसक जंतुओं का डर होता तो एवज़ पुकारते— "ए पीर हाजिर होइए, हम आपकी शरण में यह दुर्गम मार्ग तय कर रहे हैं !" शेख़ निज़ामुद्दीन ने उस पीर, धर्मगुरु के विषय में जानकारी मालूम करने का प्रयत्न किया तो एवज़ ने बाबा फ़रीद का नाम लिया । दिल्ली पहुंचकर जिस मुहल्ले में वास किया वहां पड़ोस में शेख़ नजीबुद्दीन मुतवक्किल (बाबा साहब के भाई) रहते थे । उनके साथ आत्मीय संबंध स्थापित हो गए और जिस व्यक्ति को देखे बिना उसके प्रेमी हो गए थे, उससे संपर्क स्थापित करने का एक साधन पैदा हो गया ।

शेख़ नजीबुद्दीन मुतवक्किल शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के बुजुर्ग, मित्र, मार्गदर्शक, परामर्शदाता सब कुछ थे । उन्होंने शेख के चिंतन पर गहन प्रभाव डाला और उसके लिए प्रत्येक अवसर पर सहायक सिद्ध हुए, दिल्ली में संभवतया शेख़ के जीवन को इतना अधिक किसी अन्य व्यक्ति ने प्रभावित नहीं किया जितना शेख़ नजीबुद्दीन मुतवक्किल ने ।

शेख़ मुतवक्किल का जीवन वास्तव में तवक्कुल (सांसारिक साधनों का भरोसा छोड़कर सब काम खुदा की मर्जी पर छोड़ देना) का जीवन था । एक हुज़रा(कोठरी) था और उसके ऊपर एक छप्पर जिसमें वह रहते थे । बहुधा उन्हें और उनके घरवालों को भूखा सोना पड़ता था । कभी कभी हज़रत बीबी फ़ातिमा साम जो उनको धर्मभाई कहती थीं, कुछ रोटियां भेज देतीं तो कई दिन का फाका समाप्त हो जाता । ईद के दिन भी ऐसी गरीबी होती कि दरवेशों को खिलाने के लिए कुछ उपलब्ध न होता । एक बार बीबी की चादर बेचकर

मेहमानों की आवभगत करनी चाही, लेकिन चादर में इतने पैबंद थे कि वह बेची न जा सकी । अपना मुसल्ला(जानमाज, वह कपड़ा जिसे बिछाकर व्यक्ति नमाज पढ़ता है) बेचना चाहा, लेकिन वह भी इस योग्य न था कि कोई खरीदता । अंत में पानी पीने का मिट्टी का सकोरा लेकर गए और दरवेशों को पानी पिलाकर भेजा । उनकी व्यस्तता की यह दशा थी कि निज़ामुद्दीन के कथनानुसार उनको यह भी मालूम न था कि आज क्या दिन है और कौन-सा महीना । एक समय एक तुर्क द्वारा निर्मित मस्जिद में इमामत की (नमाज पढ़ाई) । धनी तुर्क ने अपनी लड़की के विवाह में अपार धन लुटाया । शेख़ मुतवक्किल ने इसका विरोध किया तो उनको इमामत से पृथक कर दिया गया । ऐसे स्वभाव और प्रकृति के व्यक्ति से संबंध शेख़ निज़ामुद्दीन के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ और उनको अपने जीवन का रुख निर्धारित करने में सहायता मिली । आरंभिक समय था; एक बार उनसे निवेदन किया कि अल्लाह से दुआ मांगें कि काज़ी का पद मिल जाए । पहले तो शेख़ मुतवक्किल ने सुनी-अनसुनी कर दी, जब दूसरी बार निवेदन किया तो फरमाने लगे—"तुम काजी क्यों बनते हो, कुछ और बनो ।" शेख़ मुतवक्किल की संगति में बाबा साहब के प्रति संबंधों और श्रद्धा में और वृद्धि हो गई ।

शेख़ निज़ामुद्दीन की आयु 20 वर्ष थी, जब वह अत्यंत रुचि के साथ अजोधन की ओर रवाना हो गए । यात्रा की दुर्गम मंजिलें अजीब दशा में तय कीं । बुध का दिन था जब बाबा फ़रीद के आस्ताने पर हाजिरी देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । बाबा साहब की आयु उस समय लगभग 90 वर्ष की थी । लगभग 75 वर्ष तक निरंतर लोगों का मार्गदर्शन करने के उपरांत अब उनकी दृष्टि अपने उत्तराधिकारी और सज्जादानशीं के लिए योग्य व्यक्ति की खोज में थी । नवयुवक को देखा तो फरमाया—

"तेरी वियोगाग्नि ने हृदय को कबाब कर दिया है, तेरी भेंट (मिलन) की उत्सुकता ने प्राणों को नष्ट कर दिया है।"

यह वियोगाग्नि एक उत्तराधिकारी की खोज में थी और इस उत्सुकता की बाढ़ के पीछे एक ऐसे मर्दे-खुदा की खोज थी जो उनके मिशन को साहस और दृढ़ता से आगे बढ़ा सके । शेख़ निज़ामुद्दीन पर ऐसा आतंक छाया कि कांपने लगे, फिर कुछ संभले और केवल इतना कह पाए— "इस अधम को हुजूर के चरण-स्पर्श करने की बड़ी अभिलाषा थी ।" उन्होंने कहा—"हर आने वाले पर आतंक छा जाता है ।"

उस दिन शिष्यत्व से नवाजे गए । शेख़ बदरुद्दीन इस्हाक़ को, जो सभाभवन

के प्रबंधक थे, आदेश हुआ कि इस प्रवासी विद्यार्थी के लिए चारपाई बिछा दो । शेख़ निज़ामुद्दीन ने जब देखा कि हर तरफ हाफ़िज़ (जिसे क़ुरआन कंठस्थ हो) विद्वान, बुज़ुर्ग धरती पर सो रहे हैं तो उन्हें चारपाई पर सोने में संकोच हुआ । शेख़ बदरुद्दीन इस्हाक़ के द्वारा शेख़ का संदेश पहुंचा—"तुम अपनी मन-मानी करोगे या पीर की आज्ञा का पालन करोगे ?" अब सिवाय आज्ञापालन के कोई चारा न था ।

दूसरा दिन हुआ तो लोगों को सिर मुंडाते हुए देखकर अब दिल भी उस ओर आकृष्ट हुआ और जैसे एक दिन पूर्व उससे लज्जा आती थी, मौलाना इस्हाक़ के द्वारा शेख़ की आज्ञा मिलने पर तुरंत सिर मुंडा लिया । इसके पश्चात दीक्षा का क्रम आरंभ हुआ जो अद्‌भुत मार्गों से गुजरा ।

एक दिन शेख़ निज़ामुद्दीन ने पीर से निवेदन किया कि आज्ञा हो तो विद्यार्जन छोड़कर दुरूद व नफ़्लों (इबादत के तरीके) में लीन हो जाऊं । फरमाया—"मैं किसी को विद्यार्जन से नहीं रोक सकता, तुम विद्यार्जन भी करो और दुरूद व वजीफों में लीन भी रहो,यहां तक कि उन दोनों में से एक स्वयंमेव ही विलुप्त हो जाए । विद्या भी दरवेश के लिए आवश्यक है, बहुत नहीं थोड़ी ही सही ।" यह प्रथम सिद्धांत था जो हृदयंगम किया गया कि बिना ज्ञान के मारिफ़त में चलना कठिन है ।

शेख़ निज़ामुद्दीन के लिए बाबा साहब न मालूम कब से घड़ियां गिन रहे थे । अब ऐसा अनुभव किया कि उनकी आध्यात्मिक धरोहर का उचित उत्तराधिकारी आ गया । उनके एक चहेते बेटे का नाम भी निज़ामुद्दीन था, लेकिन दोनों का अंतर इस प्रकार उनके मुख से प्रकट हुआ—"यह (बेटा) नानी है और वह (महबूबे-इलाही) जानी ।"

शेख़ निज़ामुद्दीन को परंपरा, संप्रदाय में प्रविष्ट कराने के बाद कुल तीन वर्ष बाबा साहब जीवित रहे । शेख़ निज़ामुद्दीन प्रतिवर्ष उनकी सेवा में उपस्थित होते थे । इस प्रकार कुल तीन बार उनकी सेवा में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और इस अवधि में बाबा साहब के पूर्ण उपदेश व आदेश की व्यवस्था और प्रचार-प्रसार का क्रम भलीभांति समझ लिया । बाबा साहब के निधन के पश्चात छह या सात बार वह अजोधन गए ।

तीन भेंटों में किस प्रकार बाबा साहब ने अपने प्रिय शिष्य को मंजिल पर पहुंचा दिया, उसका कुछ अनुमान उन घटनाओं से लगाया जा सकता है जिसका वर्णन स्वयं शेख़ ने अनेक अवसरों पर अपनी मजलिसों में किया—(1) बाबा साहब ने शेख़ निज़ामुद्दीन से क़ुरआन के छह सिपारे, भूमिकाएं, अबू शकूर सालमी

(संपूर्ण) और अवारिफ़ुल-मआरिफ़ के छह अध्याय पढ़ाए । क़ुरआन की शिक्षा उस चिंतन की गहनता के ज्ञान के लिए आवश्यक थी जिसके द्वारा फ़िक़ह (इस्लामी धर्मशास्त्र) के प्रश्नों-मसलों से परिचित होना अभीष्ट था । 'अवारिफ़ुल मआरिफ़' एक संपूर्ण आचार संहिता थी जिसमें ख़ानक़ाह की व्यवस्था, क्रियात्मक प्रशिक्षण और संस्था का संपूर्ण विवरण अंकित है । यह वह संक्षिप्त लेकिन संपूर्ण पाठ्यक्रम था जिसके द्वारा शेख़ निज़ामुद्दीन को भावी उत्तरदायित्वों के लिए तैयार किया गया । (2) अजोधन में एक दिन शेख़ निज़ामुद्दीन को उनका पुराना साथी, सहपाठी मिला । उसने शेख़ निज़ामुद्दीन के वस्त्र मैले और फटे हुए देखे तो कहा—"मौलाना निज़ामुद्दीन तुम्हारी क्या दशा है ? यदि तुम नगर में शिक्षा देने लगते तो मुफ़्ती (धर्मशास्त्रविद्) कहलाने लगते और तुम्हारी दशा अच्छी होती ।" यह बातचीत जब बाबा साहब को मालूम हुई तो उन्होंने आदेश दिया कि रसोई से भोजन की एक थाली (तबाक़) लेकर सिर पर रखो और उस साथी को दे आओ और एक शेर प्रात: की बात के उत्तर में कह दो जिसका अर्थ है—

> ' "मेरा सहयात्री नहीं हो सकता, अपना रास्ता ले और रवाना
> हो जा, सकल सौभाग्य तेरे भाग्य में आए और हतभाग्य मेरे
> भाग्य में ।"

इसमें शिक्षा का पहलू यह था कि शेख़ निज़ामुद्दीन पर यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि जो मार्ग उन्होंने अपनाया है उसकी मांग और है, और जो लोग सांसारिक सत्ता, अधिकार के इच्छुक होते हैं, उनके मार्ग दूसरे हो जाते हैं । (3) एक दिन बाबा साहब 'अवारिफ़' पढ़ रहे थे । जो प्रति उनके सामने थी वह अशुद्ध थी और बाबा साहब को एक एक कर उसे शुद्ध करना पड़ता था । शेख़ निज़ामुद्दीन के मुख से निकल पड़ा कि दिल्ली में शेख़ नजीबुद्दीन मुतवक्किल के पास उन्होंने एक प्रति देखी थी जो स्वच्छ और बहुत अच्छी थी । यह वाक्य सुनते ही बाबा साहब के मुख पर नाराजगी के निशान प्रकट हुए—"क्या इस फकीर में शुद्ध करने की योग्यता नहीं है ?" दो-एक बार कहा और बड़ी अप्रसन्नता व्यक्त की । शेख़ निज़ामुद्दीन आरंभ में तो इस वाक्य का अर्थ न समझे, लेकिन जब अनुमान हुआ कि उन्हीं की ओर संबोधन था तो क्षमायाचना की । बाबा साहब पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा । शेख़ निज़ामुद्दीन अत्यंत परेशान और दुखी होकर बाहर निकल गए, अपने जीवन को व्यर्थ समझने लगे, यहां तक कि आत्महत्या का विचार दिल में आया । जब परेशानी हद से बाहर बढ़ गई तो बाबा साहब के पुत्र शेख़ शाहबुद्दीन ने पिता को मना लिया । बाबा साहब नें शेख़ निज़ामुद्दीन को बुलाया, दुबारा शिष्य बनाया और फरमाया—"पीर प्रसाधिका के समान होता

है ।'' देखने में तो साधारण-सी बात बाबा साहब की नाराजगी का कारण बन गई, लेकिन इसमें बड़ा मनोवैज्ञानिक तथ्य एवं दृष्टि निहित है । शेख़ निज़ामुद्दीन ने दिल्ली की ज्ञान-गोष्ठियों में अपना लोहा इस प्रकार मनवाया था कि लोग उनको गोष्ठी-भंजक, सभा-भंजक कहने लगे थे । इस लोकप्रियता तथा मान्यता ने उनकी बुद्धि में ज्ञान की श्रेष्ठता की भावना उत्पन्न कर दी थी जिसे बाबा साहब की तीव्र दृष्टि और उनकी सचाई की पकड़ की क्षमता ने पहचान लिया और उसके सुधार के लिए यह उपाय अपनाया । (4) बाबा साहब के सभा-भवन में एक जोगी से शेख़ निज़ामुद्दीन बातचीत कर रहे थे । विषय था कि बच्चे रुचिहीन पैदा होते हैं, जिसका कारण यह है कि लोगों को सहवास का समय ज्ञात नहीं । जोगी ने बताया कि प्रत्येक दिन के पृथक गुण हैं । शेख़ ने पृथक पृथक दिनों के गुण जोगी से सुनकर याद कर लिए । बाबा साहब ने सुना तो फरमाया—''जो कुछ तुम याद कर रहे हो यह तुम्हारे किसी काम नहीं आएगा ।''

हज़रत महबूबे इलाही ने पीर की इच्छा जान ली और उम्र भर ब्रह्मचारी रहे । बीबी फ़ातिमा साम ने एक लड़की से संबंध के विषय में कहा तो उन्होंने यह सारा विवरण सुनाया । परंतु शेख़ ने इस विषय में इस प्रकार अपने नफ़्स पर—इंद्रियों पर अधिकार प्राप्त कर लिया था कि उनके जीवन में कभी कोई द्वंद्व दिखाई नहीं दिया । शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहलवी को ब्रह्मचारी रहने के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ा और स्वयं उनके कथनानुसार नींबू व संभालू का पानी पीते पीते उनकी बुरी दशा हो गई थी । (5) एक दिन महबूबे-इलाही ने देखा कि बाबा साहब अपने हुज़रे (कोठरी) में नंगे सिर चारों ओर फिर रहे हैं और एक पद बार बार पढ़ते हैं तथा सजदे में सिर रख देते हैं । पद का भावार्थ है—

''मैं चाहता हूं कि सदैव तेरे ही प्रेम में जीवित रहूं, मिट्टी हो जाऊं, और तेरे चरणों में सांस लेता रहूं । उभयलोक में मुझ दरिद्र का अभीष्ट तू ही है । मैं तेरे लिए मरता हूं और तेरे लिए ही जीवित रहता हूं ।''

महबूबे-इलाही ने पीर की इस दशा को अप्रतिम आध्यात्मिक परिपूर्णता, संतुष्टि का फल समझा और अनायास हुज़रे में प्रवेश कर सेव्य के चरणों पर सिर रख दिया । पीर ने फरमाया—''निज़ाम ! जो कुछ मांगना चाहते हो, मांगो ।'' निज़ामुद्दीन ने निवेदन किया—''स्थिरता, अचलता चाहता हूं ।'' बाबा साहब ने उनके लिए दुआ की, तत्पश्चात हज़रत महबूबे-इलाही को पछतावा हुआ कि समाअ (वज्द, झूमना, गाना-बजाना) की दशा में संसार से उठने की

विनती क्यों नहीं की ! ये घटनाएं न केवल महबूबे-इलाही की बौद्धिक शिक्षा के परीक्षण में सहायक हैं, वरन उनसे बाबा साहब की शिक्षा-दीक्षा के रूप पर भी प्रकाश पड़ता है ।

अजोधन में दारिद्र्य और फाका

बाबा फ़रीद के अंतिम समय में सभाभवन में दरिद्रता-फाकाकशी का वातावरण रहता था । ऊपरी भेंट, आय के द्वार लगभग बंद हो गए थे । घर में और सभाभवन में बराबर तंगी तथा फाके की दशा रहती थी । शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया फरमाया करते थे कि जिस दिन 'डीले' और 'पीलू' की रकाबी खाने को मिलती उस दिन सभाभवन में ईद का दिन होता था ।

एक बार महबूबे-इलाही ने दिल्ली लौटने की आज्ञा मांगी तो बाबा साहब ने ग़यासी प्रदान की, परंतु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि शेख़ के घर में खाने को कुछ नहीं है तो वह शेख़ के चरणों में लाकर रख दी ।

शेख़ निज़ामुद्दीन जब बाबा साहब की सेवा में पहुंचे तो उनकी आर्थिक दशा अत्यंत खराब थी । शरीर पर फटे-मैले वस्त्र थे, आवश्यकता की वस्तुएं भी न थीं । 'सैरुल औलिया' के रचयिता की दादी बीबी रानी ने एक दिन निवेदन किया—''भाई तुम्हारे वस्त्र बहुत मैले हो गए हैं, यदि तुम उन्हें उतार दो तो मैं साबुन आदि से धो दूं और पैबंद भी लगा दूं । शेख़ निज़ामुद्दीन ने बहुत क्षमा-याचना की, लेकिन बीबी रानी ने बहुत आग्रह किया और अपनी चादर देकर कहा कि जब तक तुम्हारे वस्त्र धोकर तैयार करूं, इसे ओढ़े रहो । शेख़ एक पुस्तक लेकर कोने में बैठ गए । बीबी रानी ने कपड़े धोए और सैयद महमूद किरमानी की पगड़ी से थोड़ा-सा कपड़ा फाड़कर उनमें पैबंद लगा दिए ।

यह था दरिद्रता और अकिंचनता का वह वातावरण जिसमें भारत के एक महानतम सूफ़ी ने अपने आध्यात्मिक व्यक्तित्व का भला-बुरा संवारा था और जहां उसे निर्धनों-कंगालों का सहारा बनने की शिक्षा मिली थी । बाबा साहब की शिक्षा के कुछ आधारभूत सिद्धांत —

बाबा साहब ने जिन सिद्धांतों पर अपने युवा शिष्य को दीक्षित-प्रशिक्षित किया था और जिन पर कर्म करने का आदेश वह निरंतर करते रहते थे, वे संक्षेप में ये थे—

(1) नैतिक शिक्षा—अधिकारों के योग्य व्यक्ति को उसके अधिकार प्रदान करने में कोई त्रुटि, लापरवाही नहीं होनी चाहिए । शत्रुओं को राजी करना चाहिए । हृदय का जंग, मोरचा दूर करना चाहिए । मुहम्मद साहब की हदीस

है कि लोहे की भांति हृदय में भी जंग लग जाता है । क़ुरआन के पाठ और मृत्यु के स्मरण से हृदय का संस्कार हो सकता है । प्रत्येक दरवेश को अपने पास आने देना चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति से निस्वार्थ भाव तथा सहानुभूति से व्यवहार करना चाहिए । जिस मनुष्य का हृदय छल-कपट, बैर, द्वेष, शत्रुता से शुद्ध नहीं वह आत्मज्ञान के मार्ग में असफल रहेगा ।

इस शिक्षा का ही प्रभाव था कि जब निज़ामुद्दीन अजोधन से दिल्ली वापस आए तो एक बजाज का ऋण चुकाया और पुस्तक का मूल्य देने का वचन दिया, लेकिन बज़ाज़ ने कुछ राशि लेकर शेष क्षमा कर दी और पुस्तक के स्वामी ने अपनी पूरी अधियाचना (मांग, धन) माफ कर दी ।

(2) आध्यात्मिक शिक्षा—तप के बिना आध्यात्मिक उत्कर्ष संभव नहीं । मनुष्य को किसी दशा में बेकार, निष्क्रिय नहीं रहना चाहिए । रोजा (उपवास) अत्यंत प्रभावशाली इबादत है । नमाज, नफ़लें पढ़ना आदि प्रथम आधा मार्ग है और उपवास रखना दूसरा आधा । 'तहजजुद' (आधी रात की नमाज) प्रभावशाली है । अल्लाह से शुभ-समय, सजल नेत्र और मन की शांति की प्रार्थना करनी चाहिए । जिस आंख में आंसू और हृदय में दर्द नहीं, वह ईश्वर-प्रेम का स्वाद नहीं चख सकता । 'सूर:यूसुफ़' (क़ुरआन का एक अध्याय, सूरत) पढ़ने से कुरआन को कंठस्थ करने का सौभाग्य मिलता है, रोग से स्वास्थ्य लाभ के लिए कब्रिस्तान में दुआ करना, प्रार्थना करना प्रभावशाली है ।

(3) संगठन-विषय या व्यवस्था संबंधी आदेश—

खिलाफत-उत्तराधिकार उस व्यक्ति को देना चाहिए जो शिक्षा, कर्म और ईश्वर-प्रेम तीनों को धारण करने वाला हो । खिलाफत नामों पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होने चाहिए ताकि स्वार्थी लोग वेशभूषा द्वारा जनसाधारण को धोखा न दे सकें । खिलाफत वास्तव में वह है जो आध्यात्मिक संकेत पर दी जाए । राजाओं-अमीरों से दूर रहना आध्यात्मिक हित के लिए आवश्यक है । जो व्यक्ति अमीरों-राजकुमारों से संबंधों के द्वार खोल देता है उसका परलोक बिगड़ जाता है ।

बाबा की सेवा में अंतिम हाजिरी

रमजान 669 हिजरी में शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया की अपने शेख़ की सेवा में अंतिम हाजिरी हुई और उस अवसर पर सिद्ध पुरुष ने अपने आध्यात्मिक उत्तरदायित्वों को उनकी ओर हस्तांतरित करने की शुभ सूचना दी । एक दिन

उन्हें बुलाया और फरमाया—"तुम्हें एक दुआ (प्रार्थना) बताई थी, तुमने याद कर ली ?" दुआ यह थी—

"ए प्राणियों पर सदैव कृपा-करुणा की वर्षा करने वाले, ए भेंटों-उपहारों के क्षमा करने वाले, ए श्रेष्ठ और उच्च वरदान के दाता, ए संकट-आपदा का विमोचन करने वाले, मुहम्मद और उनकी सत्कर्मी संतान पर कृपा कर और हमें प्रात: एवं सायंकाल क्षमा का, मुक्ति की ख़िलअत (राजा की ओर से दी जाने वाली पोशाक पुरस्कार या सम्मान के रूप में) प्रदान कर । ए खुदा ! हमें इस्लाम की दशा में मृत्यु दे और भाग्यवानों की श्रेणी में शामिल कर और सकल पैगंबरों तथा नबियों और समीपस्थ फरिश्तों-देवदूतों पर अपनी दया कर और ए कृपा-करुणा करने वाले अपनी दया से उन पर अत्यधिक सलाम भेज।"

बाबा साहब ने जांच-पड़ताल करने के पश्चात कि दुआ उन्होंने याद कर ली है, मौलाना बदरुद्दीन इस्हाक़ से लिखवाकर खिलाफतनामा प्रदान किया और हांसी में शेख़ जमालुद्दीन हांसवी को और दिल्ली में काजी मुंतख़िब को दिखाने का आदेश दिया । इस खिलाफतनामा में शेख़ निज़ामुद्दीन को अत्यंत स्नेह के साथ—"फ़र्जंद रशीद, इमाम पाक दीन, पाक राय, दानिशमंद बरगुज़ीदह (विवेकशील शुद्धात्मा)कहा गया है और इस हदीस पर समाप्त किया गया है —

"तू संसार में मुसाफिर या रास्ता चलने वाले की भांति रह और अपने अस्तित्व को कब्र वालों (मृतकों) में शुमार कर ।"

यह खिलाफतनामा 25 रमजान 669 हिजरी को प्रदान किया गया । जुमे की नमाज से फ़ुरसत पाकर शेख़ फ़रीद ने अपना मुखस्राव (राल) उनके मुंह में लगाया और क़ुरआन कंठस्थ करने का आदेश दिय. । इसके पश्चात उनकी वे आध्यात्मिक भावनाएं स्पंदित हुईं जिसके अधीन उन्होंने अपने सबसे कम आयु के एक और खलीफा (उत्तराधिकारी) को दीक्षित किया । आवाज दी—"निज़ाम !" उत्तर दिया—"हाजिर हूं ।" फरमाया—ईश्वराज्ञा और पद ने तुझे उभयलोक का स्वामी बना दिया, जा और हिंद-देश पर आधिपत्य जमा ।"

कुछ दिन पूर्व उनके लिए यह प्रार्थना कर चुके थे—"खुदा तुझे दोनों लोकों में सौभाग्यशाली बनाए । तू एक ऐसा वृक्ष है जिसकी छाया में असंख्य प्राणी सुख-चैन से रहें ।"

शेख़ निज़ामुद्दीन जब अजोधन से दिल्ली प्रस्थान कर गए तो हांसी में शेख़ जमालुद्दीन को खिलाफतनामा दिखाया, उन्होंने फरमाया—"खुदा का हजार बार शुक्र है कि उसने मोती उसको दिया जो इसका मूल्य जानता था ।"

बाबा साहब का निधन

शेख़ निज़ामुद्दीन के अजोधन से लौटने के बाद वह वीतरागी संत, जिसके अस्ताने पर अनेक आत्मज्ञान के अभिलाषी एकत्रित होते रहते थे और जिसके उपदेशों-प्रवचनों का सूर्य वर्षों तक अंधेरे दिलों को प्रकाश पहुंचाता रहा, अस्त होने लगा । ख़ला के रोग ने जिसे निढाल कर दिया । सैयद मुहम्मद क़िरमानी उनका हाल-चाल मालूम करने अजोधन पहुंचे । बाबा साहब हुज़रे में एक ऊंची चारपाई पर विश्राम कर रहे थे । हुज़रे के बाहर उनके बेटे और परिवार के लोग सज्जादान-शीनी (गद्दी) के विषय में विचार कर रहे थे । क़िरमानी को अंदर आने से मना किया लेकिन वह हुज़रे का द्वार खोलकर एकदम से अंदर चले गए और बाबा के चरणों में गिर पड़े । उन्होंने आंखें खोलीं और पूछा—"सैयद कैसे हो ? यहां कब आए ?" क़िरमानी ने उत्तर देने के पश्चात शेख़ निज़ामुद्दीन का सलाम पहुंचाया । शेख़ ने अपनी पसंदीदगी जाहिर की, पूछा—"मौलाना निज़ामुद्दीन कैसे हैं ?" फिर अपना कुरता, मुसल्ला (नमाज पढ़ने के लिए कपड़ा या दरी का टुकड़ा)असा (दंडा)— जो वस्तुत: उत्तराधिकारी के लक्षण थे, उनको देने का निर्णय व्यक्त किया । यह बात यद्यपि बाबा साहब के सुपुत्रों को अप्रिय लगी, लेकिन बाबा का यह निर्णय आध्यात्मिकता के गहन अनुभवों पर अवलंबित था ।

5. चिश्तिया संप्रदाय के प्रधान के रूप में

शेख़ निज़ामुद्दीन जब अंतिम बार बाबा साहब की सेवा में उपस्थित होकर लौटे तो जिम्मेदारियों का भारी बोझ उनके कंधों पर था । उनको चिश्तिया संप्रदाय के प्रचार-प्रसार का कार्य करना था और अपने पीर हज़रत बाबा साहब के शिष्यों, अनुयायियों और खलीफाओं को प्रेम-सूत्र में बांधकर रखना भी उनका उत्तरदायित्व था । उन्होंने जिस प्रकार अपने प्रथम उत्तरदायित्व को पूरा किया उसकी साक्ष्य उनके शिष्यों की वे ख़ानक़ाहें हैं, जो देश के कोने कोने में स्थापित हो गई थीं । बंगाल से लेकर गुजरात तक और दिल्ली से देवगिरि तक उनके उत्तराधिकारी फैल गए थे । बाबा साहब के शिष्यों को जिस प्रकार उन्होंने प्रेम तथा एकता के संबंध में बांधे रखा, इसके विषय में अमीर खुसरो कहते हैं—(बाबा) फ़रीद की लड़ी को तुमने एक प्रेम-संबंध में पिरोया, इसी कारण तुम्हारी उपाधि 'निज़ाम' हुई ।

मुहम्मद ग़ौसी का कहना है कि हज़रत महबूबे-इलाही ने सात सौ खलीफाओं को विभिन्न नगरों में भेजा था, लिखा है—

"बहुत कम समय में आपकी दरवेशी और शिष्य-वत्सलता, नेतृत्व, पथ प्रदर्शन की ख्याति समस्त संसार के प्रत्येक कोने में और प्रत्येक कान में पहुंच गई और अपूर्ण की—अशुद्ध की पूर्णता—शुद्धता, सिद्धों की स्वीकृति के लिए प्रत्येक दिशा में, प्रत्येक प्रांत में आपके सदुपदेशक और वली-खलीफाओं में से एक खलीफा पहुंच गए ।"

(गुलज़ारे-अबरार)

भारत में मध्यकाल के इतिहास में हज़रत महबूबे-इलाही का सबसे महान कार्य यह था कि उन्होंने सूफ़ीमत के आंदोलन को जनता का आंदोलन बना दिया और सबके लिए शिष्यत्व के द्वार खोल दिए जो व्यक्ति शिष्य बनने की प्रार्थना करता उसको खुशी से शिष्य बना लेते थे । एक दिन निरंतर कई घंटों तक लोगों को शिष्य बनाते रहे । प्रसिद्ध इतिहासकार ज़याउद्दीन बर्नी को यह देखकर आश्चर्य भी हुआ लेकिन कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ । फिर स्वयं

शेख़ ने फरमाया कि प्रत्येक की आवश्यकता और उसके हित अलग अलग होते हैं, उन्हीं के अनुसार सूफियों को कार्य करना होता है । हज़रत बाबा साहब के युग से विशेष और साधारण व्यक्ति के शिष्य होने का क्रम जारी है ।

''इसलिए मैं शिष्यों को दीक्षा देने में अधिक सावधानी व छानबीन नहीं करता । इसके कुछ कारण हैं । एक यह है कि मैं सुनता हूं कि बहुत से लोग मेरे शिष्य बनने के पश्चात पाप व नाफ़रमानी (अवज्ञा) से बचे रहते हैं । नमाज सामूहिक रूप में पढ़ते हैं और दुरूद व नफ़ल पढ़ने में लीन रहते हैं ।''

('सैरुल औलिया' में हसरतनामा का संदर्भ)

खिलाफत की परंपरा में महबूबे-इलाही के जो नियम थे और खलीफाओं से जो आशा रखते थे उसका अनुमान निम्न घटनाओं से लगाया जा सकता है—

(1) अंतिम समय में खिलाफत के लिए कुछ नाम प्रस्तुत हुए तो अरबी सिराज का नाम देखकर फ़रमाया —

> ''इस कार्य में प्रथम दर्जा ज्ञान का है । हज़रत महबूबे-इलाही ने खिलाफत के विषय में यह नियम/ सिद्धांत सामने रखा और किसी अज्ञानी को कभी खिलाफत प्रदान नहीं की ।''

(2) मौलाना यह्या को जो खिलाफतनामा प्रदान किया था, उसके मूल की प्रतिलिपि 'सैरुल औलिया' में दी गई है—

''वली (ऋषि) की वाणी सत्य के साथ व्यक्त होती है और वह संसार में खुदा का आशीर्वाद देने वाला होता है ताकि लोगों को गुमराही-अज्ञानता के अंधेरे से ज्ञानोपदेश के प्रकाश की ओर निकाले और उन्हें क्षमादाता (ईश्वर) के निकट करे.......एक ईश्वर की ओर बुलाना-पुकारना इस्लाम के स्तंभों में एक श्रेष्ठ स्तंभ है.......हदीस में अंकित है कि सबसे अधिक खुदा के मित्र वे हैं जो खुदा और खुदा के बंदों को—मित्र रखते हैं, बुरी बातों से दूर रखने और अच्छी बातों का आदेश देने के लिए पृथ्वी पर चलते हैं........मैंने बेटे अजीज़.......शम्सुल मलत पिता मुहम्मद बिन यह्या को आज्ञा व जाने की अनुमति दी, जब मैंने अनुभव कर लिया कि यह हज़रत मुहम्मद के मार्ग पर दृढ़ और अचल हैं, और उसने अपना सारा समय खुदा की आराधना व आज्ञापालन में लगा दिया है......संसार और भौतिकता से विमुख है, वह संसार तथा संसार के स्वामियों से निस्संग है...... और एकाग्रचित खुदा के ध्यान में मग्न है........हमने शम्सुद्दीन यह्या को अपना स्थानापन्न व उत्तराधिकारी (खलीफा) बनाया ।''

(3) शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहलवी ने अमीर खुसरो के द्वारा शेख़ की

सेवा में प्रार्थना की कि लोगों की बाधा के कारण खुदा के स्मरण में तल्लीन नहीं हो सकता । आज्ञा हो तो पर्वत के अंचल में जा बसूं । हज़रत शेख़ ने फरमाया—

''अमीर खुसरो ! शेख़ नसीरुद्दीन से कह दो कि तुम्हें लोगों में रहना है और लोगों के अन्याय-अत्याचार को सहन करना होगा और इसके बदले में उनके साथ त्याग, दानशीलता, उदारता तथा क्षमा का व्यवहार करना होगा ।''

(4) मौलाना बुरहानुद्दीन ग़रीब की आयु सत्तर वर्ष से अधिक हो गई थी । अपने कंबल की दो तह करके उस पर बैठ जाते थे । लोगों ने शेख़ से शिकायत की कि वह शेख़ की—धर्मगुरु की गद्दी पर बैठकर सूफियों की पद्धति का सम्मान नहीं करते । शेख़ यह सुनकर दुखी हुए और जब मौलाना बुरहानुद्दीन मिलने आए तो उनसे बात न की । जब सभा भवन उठकर गए तो इक़बाल ने यह आदेश सुनाया कि तुम तुरंत लौट जाओ और अपने घर चले जाओ । मौलाना बहुत ही परेशान हुए । किसी ने ख़ानक़ाह के निकट रहने को स्थान न दिया कि कहीं शेख़ की नाराजगी का कारण न बन जाए । शेख़ की नाराजगी दूर करने का बहुत प्रयत्न किया गया, लेकिन कोई सफलता न मिली । अंत में अमीर खुसरो गर्दन में पगड़ी डालकर (यह अपराधियों का तरीका था, जब अपराध की स्वीकृति के साथ क्षमा-याचना की जाती थी) शेख़ की सेवा में उपस्थित हुए । शेख़ की नाराजगी दूर हो गई और मौलाना बुरहानुद्दीन को बुलाकर पुन: दीक्षा दी गई ।

(5) काजी मुहीउद्दीन काशानी को जो खिलाफतनामा प्रदान किया गया, उसमें लिखा गया था—

''संसार और उसकी क्षणभंगुर सुंदरता को त्याग कर अल्लाह से लौ लगाओ, संसार और संसार में रहने वालों की ओर तनिक भी आकृष्ट न होओ । यदि तुम्हें जागीर आदि मिले तो उसे स्वीकार करो और राजाओं के उपहारों को स्वीकृति की दृष्टि से न देखो और यदि तुम्हारे पास मुसाफिर (भिखारी) आए और उस समय तुम्हारे पास कुछ न हो तो उसे खुदा के वरदानों में से एक वरदान समझो......यदि तुमने इस प्रकार कार्य किया तो तुम मेरे खलीफा—उत्तराधिकारी हो.....अन्यथा मेरा खलीफा मुसलमानों पर खुदा है ।''

मौलाना अवध में रहते थे । सुल्तान अलाउद्दीन ख़िल्जी का राज्यादेश पहुंचा कि काजी का पद (न्यायाधीश) जागीर आदि के साथ सौंपा जाता है ।

मौलाना राज्यादेश लेकर दिल्ली में शेख़ की सेवा में उपस्थित हुए और निवेदन किया कि स्वामी जैसा कहें, अमल किया जाए । शेख़ यह सुनकर दुखी हुए और फरमाया—"तुम्हारे दिल में इसका ख्याल आया होगा, तब ही यह राज्यादेश भेजा गया ।" और उनसे खिलाफतनामा वापस ले लिया । यद्यपि काजी मुहीउद्दीन काशानी का स्वयं हज़रत शेख़ इतना सम्मान करते थे कि जब आते तो आप स्वागत के लिए खड़े हो जाते थे । एक वर्ष तक यह खिलाफतनामा वापस न किया गया ।

इन कुछेक घटनाओं से खिलाफत की परंपरा में शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के यह सिद्धांत स्पष्ट होते हैं —

(1) खिलाफत के लिए ज्ञान आवश्यक है ।

(2) खलीफा का काम अल्लाह की ओर बुलाना और बुराई से—दुर्गुणों से बचाना है ।

(3) सुन्नत (वह तरीका जिस पर पैगंबर मुहम्मद और उनके साथी चले) पर अडिग रहना अनिवार्य है ।

(4) ख़लीफा को लोगों में रहकर कार्य करना चाहिए ।

(5) विनम्रता एवं दीनता के बिना लोगों में काम नहीं हो सकता ।

(6) संसार, भौतिक ऐश्वर्य और पापों से बचना आवश्यक है ।

(7) शाही नौकरी या जागीर स्वीकार करने के पश्चात खिलाफत शेष नहीं रहती ।

अपने प्रबंध, सुधार, शिक्षा की आधारशिला हज़रत महबूबे-इलाही ने इस सिद्धांत पर रखी थी कि एक नीति-उपदेशक के लिए आवश्यक है कि वह स्वयं उन नैतिक मूल्यों का पाबंद हो जिसका उपदेश वह दूसरों को देता हो । बेअमल इंसान के शब्द किसी के हृदय-पटल पर अंकित नहीं हो सकते। सुधार का काम सहानुभूतिपूर्ण संबंध स्थापित करने के पश्चात ही संभव है । किसी मनुष्य का सुधार उसकी बुराइयों का बखान करने से नहीं हो सकता । अपेक्षित है कि उचित अवसरों, प्रसंगों के द्वारा, संकेतों ही संकेतों में नैतिक और आध्यात्मिक रोग का इलाज किया जाए । उन्होंने आध्यात्मिक गुरु के लिए जो दस नियम प्रस्तुत किए उनमें सबसे प्रमुख यह है—

"जहां तक संकेतों, इशारों के द्वारा शिष्य को उपदेश देना संभव हो, वाणी, व्याख्यान या विवरण द्वारा न करे ।" (सैरुल औलिया)

अनुचित दबाव द्वारा जो प्रतिक्रिया होती है, वह सुधारक के संदेश को प्रभावहीन बना देता है । मनुष्य की प्रकृति का गहन अध्ययन इंद्रियदमन की

पूंजी, इस कार्य के लिए अति आवश्यक है । मनोविज्ञान में मनुष्य की तीन दशाओं, रूपों का विवेचन किया जाता है—बुद्धि, अनुभूति और इच्छा व कर्म । शेख़ निज़ामुद्दीन मानव-कर्म में उनकी कारफरमाई को इस प्रकार समझाया करते थे—

"प्रथम भय है अर्थात वह बात जो मन में हो । इसके पश्चात निश्चय या इरादा है यानी उस आशंका पर मन लगे । और फिर कर्म, अर्थात वह इरादा कर्म में बदल जाता है, क्रिया का रूप धारण कर लेता है.......जब तक कर्म न किया जाए, जवाबतलबी नहीं हो सकती या अपराध नहीं माना जा सकता, लेकिन खास लोगों से भय की सूरत में ही जवाबतलबी कर लेते हैं ।"

अतएव शेख़ अपने खलीफाओं उत्तराधिकारियों को आदेश देते थे कि सुधार का काम-क्रिया किए जाने पर, निर्भर न रखें 'खतरा' या वृद्धि के आधार पर ही अपना कार्य शुरू कर दें । एक नैतिक उपदेशक को प्रेम व करुणा की मूर्ति होना चाहिए । कठोर प्रकृति के व्यक्ति की बात सुनने को कोई तैयार नहीं होता ।

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने अपने शिष्यों को उस समय खिलाफत प्रदान की जब यह संतुष्टि हो गई कि ये नियम उनके व्यक्तित्व का अंग बन चुके हैं ।

6. ख़ानक़ाही व्यवस्था : नियम और रीति

ग़यासपुर, जहां शेख़ निज़ामुद्दीन की ख़ानक़ाह थी, संभवतया ग़यासुद्दीन बलबन के नाम पर एक बस्ती थी, छोटी और साधारण । नगर का जो भी निवासी ख़ानक़ाह जाने का इरादा करता उसे कई मीलों की यात्रा करनी पड़ती थी । दूरी को दृष्टि में रखकर श्रद्धालुओं ने सारे मार्ग में स्थान स्थान पर छप्पर डालकर नमाज का प्रबंध कर दिया था । मटके, लोटे और प्याले यहां हर घड़ी मौजूद रहते थे । लोग वुज़ू करते, नफ़ल पढ़ते और फिर अपने गंतव्य की ओर प्रस्थान कर देते । सड़क पर भारी भीड़ से मेले का भ्रम होता था । निकट ही यमुना नदी ख़ानक़ाह का बिंब छाती से लगाए शांतिपूर्वक बह रही थी । उसकी शीतल समीर ख़ानक़ाह के आध्यात्मिक वातावरण को और अधिक मनोहर बना देती थी ।

ख़ानक़ाह का भवन बहुत विशाल था । मध्य में एक हाल था, जो सभा-भवन कहलाता था, उसके दोनों ओर छोटे छोटे कमरे थे । प्रांगण में एक वटवृक्ष था । उसकी छाया छत तक जाती थी । मुख्य द्वार के सामने एक द्वार पिंडी (देहलीज) थी जिसके दोनों ओर दरवाजे लगे हुए थे । यह द्वार पिंडी इतनी विशाल थी कि कुछेक व्यक्ति बिना किसी का मार्ग रोके संतोष से, चैन से बैठ सकते थे । देहलीज से लगा रसोईघर था । छत पर लकड़ी की दीवारों का एक छोटा-सा कमरा था । शेख़ रात में इसी में विश्राम करते थे । उनके कमरे की एक खिड़की यमुना की ओर खुलती थी और एक छोटी खिड़की आंगन के सभागार की ओर । छत पर एक छोटी-सी दीवार थी, लेकिन आंगन की तरफ की दीवार कुछ ऊंची थी ताकि लोग छाया में बैठ सकें । कभी शेख़ उपस्थित लोगों से निवेदन करते थे कि पास पास, मिलकर बैठें जिससे सब पर छाया रहे ।

ख़ानक़ाह में श्रद्धालुओं का हर समय जमघट रहता था । कुछ लोग दिल्ली नगर और उसके पास के होते, कुछ ऐसे होते जो लंबी यात्रा करके दूरस्थ स्थानों से वहां पहुंचते थे । यदि कभी मंगोलों के आक्रमण का भय होता तो निकटवर्ती असंख्य लोग शरण लेने के लिए ख़ानक़ाह में एकत्रित हो जाते ।

कुछ ऐसे शिष्य, जिन्हें अधिक समय तक ठहरना होता था, वे नगर में या पड़ोस में ठहरने का प्रबंध कर लेते थे । सभागार में कंबल आदि का प्रबंध रहता था ताकि किसी यात्री को कठिनाई न हो ।

आय-भेंट

एक समय था कि शेख़ का जीवन बहुधा दरवेशी व फाकामस्ती का था । एक जीतल की दो सेर रोटी या एक जीतल के दो मन खरबूजे मिलते थे । लेकिन अक्सर ऐसा होता कि उनमें उसकी खरीददारी की भी सामर्थ्य न होती । जब सदा रोज़ा रखने से दरवेशी, निस्पृहता के स्वाद से परिचित हो गए और संसार का धन उनकी दृष्टि में ऐसा निर्मूल हो गया तो ऊपरी आय (दान, भेंट आदि) के द्वार खोल दिए गए और भेंट, उपहार, नकद, वस्त्र, अन्न आदि इतनी अधिक मात्रा में आना शुरू हुए कि ऐसा लगा जैसे यमुना नदी की किसी धारा को सोने-चांदी में परिवर्तित करके उनकी ख़ानक़ाह की ओर मोड़ दिया गया है । (प्रात काल) से आधी रात तक आने वालों का क्रम जारी रहता । धनी लोग उपहार लाते, और जिन्हें आवश्यकता होती वे उन्हें प्राप्त करते । कोई कंगाल बिना आवश्यकता पूरी किए ख़ानक़ाह से नहीं जाता था । भोजन तो कम-से-कम ऐसी वस्तु थी जो उसे मिल ही जाती थी ।

आय का प्रबंध इक़बाल को सौंपा गया था । जब आय अधिक होती तो शेख़ स्वयं व्यवस्था करते ताकि वह शीघ्रातिशीघ्र बांटी जाए और जमा करके न रखी जाए । वैसे शेख़ का यह नियम था कि प्रत्येक शुक्रवार को ख़ानक़ाह के गोदामों में झाड़ू दी जाती थी ।

आय, भेंट के विषय में कुछ नियम जिन पर शेख़ कठोरता से अमल करते थे, ये थे—(1) हृदय में किसी उपहार के लिए तनिक भी इच्छा न हो । (2) कोई राशि निश्चित समय पर और निश्चित मात्रा या संख्या में न आए । (3) यह किसी बाग, जमीन आदि के रूप में न हो । (4) जो वस्तु भेंट के रूप में आई हो एकत्रित करके न रखी जाए ।

लंगर

शेख़ का लंगर दिन भर चलता था और चाहे स्वयं रोज़ा रखते थे लेकिन आने वालों के लिए खाने का प्रबंध करते थे, और लोगों को खिलाकर प्रसन्न होते थे । खाने के विषय में धर्म, विश्वास, संप्रदाय किसी बात से भी लंगर को प्रभावित नहीं होने देते थे । ख़ानक़ाह के कुछ विश्वसनीय तथा बुजुर्ग लोग उसकी देखभाल

करते थे । मौलाना बुरहानुद्दीन ग़रीब वृद्धावस्था के होने पर भी पाकशाला में बैठकर भोजन तैयार करते थे ।

भोजन तथा आतिथ्य को ख़ानक़ाह की व्यवस्था में विशेष महत्व प्राप्त था । बीबी फ़ातिमा साम का यह कथन अक्सर दोहराते थे कि रोटी के उस टुकड़े और जल के उस सकोरे को जो ज़रूरतमंद को दिया जाता था, अधिक नेमतें प्राप्त होती हैं, अपेक्षाकृत लाख रोज़ों और लाख नमाजों के ।

खाने के शिष्टाचार का भी विशेष ध्यान रखा जाता था । खाने से पहले हाथ धुलवाने का प्रबंध था । इस विषय में पैगंबर मुहम्मद के तरीके को विस्तार से शेख़ अपनी प्रवचन-सभाओं में व्यक्त करते थे । एक बार खाना हो चुका तो अमीर खुसरो बर्तनों को पोंछ-पोंछकर चाटने लगे । हज़रत शेख़ ने फरमाया—"तुर्क, यह क्या कर रहे हो ?" निवेदन किया—"हुजूर एक महात्मा थे जिन्हें लोगों ने 'भिक्षापात्र वाला ख्वाजा' की उपाधि दी थी, उसी की इच्छा है ।"

हज़रत शेख़ इस विषय में साधारण से साधारण बात का भी ध्यान रखते थे । जिस समय खाना लगाया जाता तो आदेश था कि अतिथि से कोई बात इस प्रकार की न कही जाए कि यदि उसका रोज़ा हो तो उसे प्रकट करने पर विवश किया जाए, और यदि न हो तो लज्जा करने लगे ।

आने वाले और उनकी समस्याएं

ख़ानक़ाह में जो भी आता, खाली हाथ हो या उपहार लिए, कोई उद्देश्य उसके हृदय में अवश्य होता था । कुछ व्यक्ति आध्यात्मिक शिक्षा व परिष्कार के लिए आते । ऐसे व्यक्ति शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहलवी के कथनानुसार सदैव खुश रहते और उनके साथ समय बिताने में एक आध्यात्मिक शांति अनुभव करते, लेकिन ऐसे व्यक्ति बहुत कम होते थे । अधिकांश तो किसी सांसारिक उद्देश्य को लेकर ही आते और इस विश्वास के साथ आते कि शेख़ की दुआ से उनकी समस्याओं का समाधान हो जाएगा तथा उनकी कठिनाइयां दूर हो जाएंगी । हज़रत शेख़ प्रत्येक व्यक्ति से उसकी कठिनाई को और मानसिक दशा मालूम करते और फिर उसकी परेशानी को, कठिनाई को अपने ऊपर आरोपित कर बैठते, अपने ऊपर तारी करके खुदा से दुआ करते । किसी को वजीफा (मंत्र) बता देते, किसी को कुछ रुपया और कपड़ा प्रदान करते, किसी के लिए सिफ़ारिश का पत्र लिख देते । प्रश्नों, समस्याओं का रूप भी वैसा ही होता था जैसे मनुष्य-जीवन के झंझट । "मैं कई लड़कियों का बाप हूं, उनकी शादी के लिए सामान

नहीं, क्या करूं ?" "मेरा माफी का कागज खो गया, नकल मिलनी कठिन है, अब क्या करूं ?" "मेरा घोड़ा खो गया है ।" "मेरा दिल किसी के प्रेम में व्याकुल है ।" यह और इस प्रकार की सैकड़ों समस्याएं शेख़ के सामने आतीं और वह सबके साथ इस सहानुभूति, ईमानदारी और संवेदनशीलता से व्यवहार करते कि हर जाने वाले को चैन मिलता और खुशी अनुभव होती । लोगों की छोटी छोटी आवश्यकताएं पूरी कर देना इतना कठिन नहीं जितना उनके दिलों को सुख-चैन प्रदान करना । शेख़ सर्वप्रथम उसी की तरफ ध्यान देते थे । कभी कभी ऐसा भी होता कि कोई व्यक्ति धृष्टता व ढीठता पर उतर आता, ख़ानक़ाह के लोग भी क्रुद्ध हो जाते, लेकिन शेख़ उसको भी बिना प्रसन्न किए न जाने देते ।

बाबा साहब ने आदेश दे रखा था कि तावीज़ लिखने की उपेक्षा न की जाए । अतएव महबूबे-इलाही तावीज़ भी लिखकर लोगों को देते थे । बाबा साहब की दाढ़ी का एक बाल उन्होंने सुरक्षा से रख लिया था । रोगियों को कभी कभी वह बाल पास रखने के लिए दे देते थे और फिर वापस लेकर ताक़ (आला) में रख देते थे । तात्पर्य यह है कि उदारता के कितने ही काम थे जो प्रातकाल से रात तक वह पूरा करते थे । पीड़ित हृदयों के लिए उनकी संगति, सान्निध्य, "जिससे जिगरे-लाला में ठंडक हो वह शबनम" जैसा महत्व रखता था ।

उर्स का पर्व

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया अपने महापुरुषों के उर्स का आयोजन सुव्यवस्था और नियमिततापूर्वक करते थे । लंगर के खर्चे बढ़ा दिये जाते थे और 'समा' (आध्यात्मिक राग-संगीत) का विशेष प्रबंध होता था । खाना घरों पर भी भेजा जाता था । तबरुर्क (प्रसाद) का विशेष ध्यान रखा जाता था कि प्रत्येक व्यक्ति को मिले । मौलाना बुरहानुद्दीन ग़रीब लंगर की रोटियां ऐसे अवसरों पर सुखाकर रख लेते थे और रोगियों को देते थे । स्वयं शेख़ इस विषय में पूछते रहते थे कि खाना किस किस के यहां भेजा गया और कौन कौन इन उत्सवों, पर्वों में सम्मिलित हुआ ।

समा

हज़रत महबूबे-इलाही की ख़ानक़ाह में कव्वालों का अच्छा प्रबंध रहता था । कभी कभी मधुर कंठ वाले शिष्य शायर या कवि से भी अशआर सस्वर सुन

लेते थे । लेकिन अक्सर यह सेवा कव्वाल ही पूरी करते थे । शेख़ ने समा के चार रूप निर्धारित किए थे—हलाल, हराम, मक्रूह (घृणास्पद, जिसका खाना हराम न हो लेकिन अच्छा न हो) और मुवाह (विहित, जिसका खाना जाइज़ हो) । जिसकी प्रवृत्ति पूर्णतया खुदा की ओर हो उसके लिए 'हलाल', जिसकी अधिकांश प्रवृत्ति खुदा की ओर हो उसके लिए 'गुवाह', जिसकी अभिरुचि लौकिकता की ओर अधिक हो उसके लिए 'मक्रूह', जिसकी रुचि बिल्कुल लौकिकता की ओर हो उसके लिए 'हराम' (निषिद्ध) । फिर जिनके लिए समा हलाल था उनके लिए भी कुछ पाबंदियां थीं, बंधन थे, जिन पर विशेष बल दिया जाता था । गाने वाला पुरुष हो, लड़का हो, स्त्री न हो । सुनने वाले ईश्वर-स्मरण से खाली न हों । जो चीज सुनाई जाए वह अश्लील या ठिठोली, हास्यास्पद न हो, मज़ामीर (चंग, रबाब, बाजे) का प्रयोग न किया जाए ।

महबूबे-इलाही का नियम था कि जब किसी समा में शामिल होने का निमंत्रण पत्र स्वीकार करते थे तो दो दिन पूर्व ही इफ्तार में कमी कर देते थे । दिल्ली में जहां भी महफिल होती और कैसे ही शेख़ सज्जादा लोग वहां उपस्थित होते, लेकिन सभापति महूबबे-इलाही ही होते थे, हालांकि आप समा वाले न बनते थे ।

हज़रत शेख़ का एक कव्वाल हसन मेमंदी था जिसके गाने का प्रभाव असाधारण था । दूसरा सामत था जो संगीतकला में अद्‌भुत था । शेख़ का नियम था कि सभा की अवधि में जो वस्त्र या पगड़ी आंसुओं से भीग जाता उसे क़व्वाल को प्रदान कर देते थे । जब शेख़ किसी बाग में या शुद्ध स्थान पर आते तो डोले (पालकी) के एक ओर इक़बाल और दूसरी ओर अब्दुल्ला चलते और धीमे करुणार्द्र शब्दों में अशआर पढ़ते जाते । शेख़ों के स्वामी पर वज्द की कैफ़यत (संगीत की रसानुभूति या आनंदातिरेक में आत्मविस्मृति की दशा) छा जाती और आंखों से आंसू प्रवाहित होने लगते ।

हज़रत शेख़ हिंदी दोहरों (दोहों) को भी बहुत पसंद करते थे । एक बार एक कव्वाल ने यह गाना आरंभ किया—

"बनिया बिना भाजी ऐसा सुख सेन या सोन ।"

तो आप नाचने लगे । एक स्थान पर रहट से पानी निकाला जा रहा था । बैलों को हांकने वाला कह रहा था—"बाहरी हो या बाहर", शेख़ पर यह सुनकर आत्मविस्मृति छा गई ।

एक समय सभाभवन या दीवानखाना के ऊपरी भाग में समा की सभा आयोजित हुई । यह ग़यासुद्दीन तुगलक का काल था और संभवतया समा की

विराट सभा पर कुछ आपत्ति होगी जिस कारण यह सभा कोठे पर की गई । मीर ख़ोरद का यह लिखना कि यह ग़यासुद्दीन तुगलक के काल की बात है, निरर्थक नहीं है । अमीर खुसरो खड़े थे और शेख़ चारपाई पर विराजमान थे । शिष्यों की बड़ी संख्या उपस्थित थी । हसन मेमंदी ने सादी का एक शेर गाया जिसका भावार्थ था—''सादी तेरी क्या हैसियत कि तू शिकार के जाल में आए । हमसे पहले तो मोटे-ताजे शिकार उस जाल में फंस चुके हैं और उनके मुकाबले में हम बहुत कमजोर शिकार की चीज हैं ।'' तो हज़रत विलाप करने लगे और बारीक पगड़ी के टुकड़े, जो फाड़-फाड़कर उनको पेश किए जाते थे, हसन मेमंदी को आंसू पोंछकर देते रहे । फिर अमीर खुसरो के सुपुत्र अमीर हाजी ने एक ग़ज़ल पढ़नी शुरू की और जब उस शेर पर पहुंचा जिसका भाव यह है—

''खुसरो भला तेरी क्या हैसियत है कि तू किस गिनती में आए, क्योंकि उसने तो यह प्रेम की तलवार बड़े बड़े युवा लोगों पर चलाई है ।''

तो शेख़ पर 'हाल' व 'वज्द' (उन्मत्तता, आत्मविस्मृति) की दशा छा गई । अमीर हाजी उस शेर को बार बार पढ़ते थे और शेख़ एक पगड़ी हसन कव्वाल की ओर फेंकते थे और दूसरी मीर हाजी की ओर, फिर शेख़ ने ख़्वाजा मूसा (सुपुत्र मौलाना बद्रुद्दीन इस्हाक़) को नाचने का संकेत किया । शेख़ पर ऐसी आत्मविस्मृति छाई कि लगभग आधा दिन उसी में डूबे रहे ।

7. नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा

मेरा फ़क्र बेहतर है इस्कंदरी से
यह आदमगरी है, वो आइना साज़ी

—इकबाल

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने अपने जीवन के लगभग सत्तर वर्ष इसी उद्देश्य और लगन में व्यतीत किए थे कि भक्त लोगों के हृदय में सृष्टिकर्ता से सच्चा संबंध स्थापित किया जाए, जीवन-क्षेत्र में थके-हारे दुर्बल व्यक्तियों की सहायता की जाए और मनुष्य को मनुष्यता का पाठ पढ़ाया जाए । अमीर ख़ुसरो की भांति वह भी अनुभव करते थे कि मनुष्य बढ़ते और मनुष्यता, मानवता घटती जाती है । उनके जीवन का शायद ही कोई दिन ऐसा बीता हो जब उस उद्देश्य से उनका हृदय खाली रहा हो या कोई रात उन्होंने ऐसी बिताई हो जिसमें उन्होंने दरिद्रों, कंगालों की असहायता, विवशता पर अश्रुपात न किया हो । उन्होंने आचरण की निर्जीव भावना में प्राण डाले और आध्यात्मिक शिक्षा को जन-सेवा के लिए प्रयोग में लाकर एक नया मोड़ प्रदान किया । वह अपने जीवन में नैतिक शिक्षा एवं आध्यात्मिक शिक्षण का महान प्रकाश-स्तंभ बन गए कि दूर दूर तक उनके प्रकाश से मार्ग ही नहीं बल्कि हृदय भी आलोकित हो गए थे । ऐसा व्यक्तित्व वस्तुतया सृष्टि की रचना का उद्देश्य पूर्ण करता और मनुष्यों के लिए अत्यधिक सफलता का शुभ समाचार बन जाता है । अमीर ख़ुसरो लिखते हैं कि अल्लाह ने उनके पीर को ''पए ग़मबरी'' (दुख सहन करने के लिए) उत्पन्न किया था ।

अल्लाह के प्रति प्रेम (ईश्वर प्रेम)

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया का कहना था कि अल्लाह के प्रेम के बिना मानव जीवन अपूर्ण और अशुद्ध है । प्रेम और भक्ति केवल मानवीय गुण हैं, फरिश्तों-देवदूतों को इसका अंश नहीं दिया गया, वह उसकी चाशनी को नहीं समझते । मौलाना फ़ख़रुद्दीन मरोज़ी को एक पत्र में लिखते हैं —

"तरीकत पर अमल करने वाले इस पर एकमत हैं कि—मानव प्राणी से.....प्रमुख उद्देश्य लोकों का पालनहार है.....प्रेम दो प्रकार का होता है—व्यक्तिगत और सिफ़ाती या गुणात्मक । व्यक्तिगत प्रेम ईश्वरीय वरदान है, प्रयत्न से यह प्राप्त नहीं हो सकता । गुणात्मक या सिफ़ाती प्रेम में प्रयत्न, उद्यम का भी हस्तक्षेप है, अधिकार है.....उसके लिए आवश्यक है। चार बातें हृदय को स्मरण के लिए अवकाश नहीं देतीं—जनता, संसार, काम-वासना और शैतान (माया) ।"

पैगंबर मुहम्मद का अनुकरण

पैगंबर मुहम्मद के अनुकरण को शेख़ों के स्वामी ईश्वर-प्रेम को सर्वाधिक प्रभावशाली उपाय बताते थे । उनके खिलाफतनामों (उत्तराधिकार-पत्र) में उसका आदेश होता था । स्वयं शेख़ के जीवन में पैगंबर प्रेम इस प्रकार समाविष्ट था कि प्रत्येक अवसर पर कोई हदीस (पैगंबर-कथन या वाणी) व्यक्त करते या सुनते—रसूल (जैसा रसूल ने किया) के महत्व तथा श्रेष्ठता को हृदयंगम कराते । उनका आत्मसम्मान और स्वाभिमान से भरा प्रेम इसको स्वीकार नहीं करता कि हज के नाते पैगंबर की ज़ियारत (किसी बुजुर्ग के मजार आदि के दर्शनार्थ यात्रा, तीर्थाटन) की जाए। मौलाना हिसामुद्दीन, जिन्हें 'क़व्वुतुल-क़ुलूब' और 'अहयाउल-उलूम' कंठस्थ थे, जब हज से वापस आए और मदीना-मुनव्वरा हाजिरी के विषय में सूचना दी तो शेख़ ने फरमाया—"जो व्यक्ति खान-ए-कावा की ज़ियारत (दर्शन) से उच्च होना चाहे उसे जनाब नबी-ए-करीम पैगंबर मुहम्मद की ज़ियारत का पृथक रूप में संकल्प करना चाहिए और इसी संकल्प से जाना चाहिए ताकि मुहम्मद साहब की ज़ियारत का विशेष अधिकारी हो । किसी के द्वारा (नाते) ज़ियारत न करे । मौलाना हिसामुद्दीन मुर्शिद की (पीर की) इच्छा समझ गए और दोबारा मदीना मुनव्वरा का संकल्प लेकर प्रस्थान किया ।

अंतर की शुद्धता

हज़रत शेख़ का कहना था कि जब तक मनुष्य अपनी आंतरिक सफाई नहीं करता उसकी आध्यात्मिक उन्नति संभव नहीं । जिस हृदय में ईर्ष्या-द्वेष, जलन और प्रतिकार की भावना हो वह ईश्वर-ज्योति का प्रासाद नहीं बन सकता । "सैरुल-औलिया" में अंकित है—

"हज़रत शेख़ाधिपति फरमाते थे कि मनुष्य के अंतःकरण से जो सांस

बाहर निकलता है वह एक ऐसा सुंदर और अनमोल मोती होता है जिसका प्रतिरूप क़यामत (प्रलय, अंतिम दिन) तक उपलब्ध नहीं हो सकता । रात-दिन, माह-वर्ष, जाड़ा-गर्मी, बरसात यों ही बीत जाते हैं लेकिन मनुष्य को कभी इस बात का ध्यान नहीं होता कि मैंने रात-दिन के क्षणों में कितने सत्कर्म किए हैं और किस सीमा तक दुष्कर्म किए हैं । उचित है कि मनुष्य सदैव विचार करे कि मैंने दिन में क्या क्या किया और रात को किस किस बात पर अमल किया ।''

शेख़ की शिक्षा थी कि मनुष्य को स्थायी रूप में अपनी जांच-पड़ताल, आत्म-निरीक्षण करना चाहिए । लोग दूसरों की प्रत्येक क्रिया का निरीक्षण करते हैं, लेकिन स्वयं अपने जीवन पर दृष्टिपात नहीं करते । फरमाया करते थे कि बुरा कहना बुरा है, लेकिन किसी का अहित चाहना उससे भी अधिक बुरा है ।

दिलों को सुख पहुंचाना

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया मानव-हृदय को सुख पहुंचाना तसव्वुफ़ की शिक्षा का निचोड़ समझते थे । वह शेख़ अबु सईद अबुलख़ैर का यह प्रसंग कहा करते थे कि किसी ने उनसे पूछा कि सत्य (खुदा) की ओर कितने मार्ग गए हैं, उत्तर दिया, ''संसार के प्रत्येक क्षण की गिनती के बराबर खुदा की ओर मार्ग गए । लेकिन हमारा अनुभव जहां तक मार्गदर्शन करता है उससे ज्ञात होता है कि दिलों को सुख पहुंचाने से निकट कोई मार्ग नहीं है । हमने जो कुछ प्राप्त किया इसी मार्ग द्वारा पाया और हम इसी की वसीयत करते हैं ।'' शेख़ का अपना व्यक्तिगत अनुभव भी यही था । फरमाया करते थे कि मुझे जो पुस्तक दी गई, जिसमें लिखा हुआ था कि जहां तक हो सके दिलों को सुख पहुंचा; ऐसा प्रयत्न कर कि मनुष्य को सुख पहुंचे या किसी भूखे का पेट भरे ।

शेख़ ने जीवन भर इसी उद्देश्य के लिए संघर्ष किया । परेशान हाल, अव्यवस्थित विचार वाले लोग उनकी ख़ानक़ाह में आते और शेख़ की शिक्षा से वह आध्यात्मिक बल प्राप्त करते जो उनके जीवन की धुरी ही बदल देता । वे भौतिक साधनों के बिना रहने का रहस्य समझ लेते और उनमें संतोष, निस्पृहता, ईश्वरेच्छा की वह दशा उत्पन्न हो जाती जो मनुष्य का सबसे बड़ा धन है और जिसके द्वारा, मानव-जीवन अभावों के भाव से मुक्ति पाता है । जो व्यक्ति ख़ानक़ाह में प्रविष्ट हो जाता, संभव न था कि शेख़ उसके दिल को आराम पहुंचाने का उपाय न करें । कितने और किस किस प्रकार की समस्याएं

थीं जो उनके पास लेकर आते थे । सबका तुरंत समाधान, मानव-सामर्थ्य-सीमा से बाहर था, केवल एक उपाय संभव था कि हृदय की बेचैनी और परेशानी को दूर किया जाए । गरीबी में मन को सुखी बनाए रखना सबसे कठिन काम है । शेख़ इसी का प्रयत्न करते थे । स्वयं उनके मुर्शिद बाबा फ़रीद गंजशकर खुदा से सजलनयन, सुअवसर तथा हृदय के सुख-चैन की प्रार्थना करते थे ।

धर्म जन-सेवा का समानार्थक

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने धर्म का क्रांतिकारी रूप प्रस्तुत किया और उसको रूढ़िवादी साधना की संकीर्ण परिधि से निकालकर जन-सेवा के विशद क्षेत्र में ले गए । फरमाया करते थे —

"पूजा (इबादत) या आराधना दो प्रकार की होती है; लाज़मी (अनिवार्य) और मुतअद्दी (संक्रामक, अपनी सीमा से आगे बढ़ना) । अनिवार्य पूजा वह है जिसका लाभ केवल पूजा करने वाले को पहुंचे, जैसे; नमाज, रोजा, हज, प्रार्थना (दरूद), तस्वीह (माला जपना) आदि । लेकिन मुतअद्दी या संक्रामक पूजा-वंदना वह है जिससे दूसरों को लाभ पहुंचे, जैसे; दूसरों के लिए मेहरबानी करना । संक्रामक पूजा का पुण्य अनगिनत व असीम है । संक्रामक पूजा का पुण्य प्रत्येक दशा में मिलता है ।"

शेख़ अपने दृष्टिकोण के समर्थन और स्पष्टीकरण में दरवेशों की कथाएं भी व्यक्त करते थे । गुजरात में दरवेश जिनमें एक मज्ज़ूब (वह फकीर जो देखने वालों की दृष्टि में बावला हो परंतु ब्रह्मलीन हो) था, एक कमरे में ठहरे । दरवेश प्रातकाल तालाब पर वजू के लिए गए, वहां बहुत-सी स्त्रियां पानी के बर्तन लिए खड़ी थीं । उन्हें सीधे जाकर तालाब से जल लेने की इजाज़त न थी । लेकिन उसको किसी ने नहीं रोका । उसने स्त्रियों के बर्तन भर भर कर देने शुरू किए और बहुत देर तक यह काम चलता रहा । जब कमरे में वापस आया तो उच्च स्वर में जिक्र (खुदा-स्मरण) व तकबीर (अल्लाह हो अकबर कहना) में लीन हो गया । मज्ज़ूब ने करवट ली और कहा—"काम तो वही था जो तुम तालाब पर कर रहे थे, यह क्या शोर मचाना शुरू कर दिया ।"

सर्व हितकारी होना चाहिए

जिस प्रकार परमात्मा का स्वामित्व इसे गवारा नहीं करता कि अपने हित या उपकार करने का क्षेत्र सीमित कर दे, उसी प्रकार मनुष्य को भी ईश्वरत्व या

खुदाबंदी की शान का, महिमा का द्योतक होना चाहिए और मानव-समुदाय में किसी प्रकार का भी भेदभाव नहीं रखना चाहिए । सूर्य निकलता है तो महलों और छप्परों दोनों को प्रकाश तथा गर्मी पहुंचाता है । बादल की बूंदें धनी-निर्धन, आस्तिक-नास्तिक का भेद नहीं करतीं, प्रत्येक भूखंड को तर करती चली जाती हैं । पृथ्वी के आंतरिक रहस्य सबके लिए खुले हैं । शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया बार बार और भिन्न भिन्न ढंगों से इस तथ्य को समझते थे कि लाभ पहुंचाने और नेकी करने में सकल मानव समुदाय को एक समझना चाहिए और किसी प्रकार का कोई अंतर या भेदभाव नहीं रखना चाहिए । इस प्रसंग में वह यह कथा सुनाया करते थे—हज़रत इब्राहीम का यह नियम था कि जब भोजन करते तो अवश्य ही किसी को भोजन करने में शरीक करते । कभी कभी अतिथि की खोज में दो दो मील निकल जाते । एक दिन एक विधर्मी या नास्तिक उनका अतिथि हुआ । उसको खाना देने में उनको संकोच था । तुरंत खुदा का आदेश हुआ—"ए इब्राहीम ! हम उसे प्राण. जीवन दे सकते हैं, लेकिन तुम उसे रोटी नहीं दे सकते ?"

संसार का परित्याग

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया अपने शिष्यों और अनुयायियों को संसार त्यागने की शिक्षा देते थे । इस संसार को त्यागने से, संसार के संघर्ष को छोड़कर एकांतवास करना अभीष्ट नहीं था । उसका अर्थ भौतिक और सांसारिक लाभ की चेष्टा में उच्च आध्यात्मिक और नैतिक जिम्मेदारियों की अपेक्षा करना था । उनके विचार में संसार नहीं, बल्कि संसार का असंतुलित उपयोग आध्यात्मिक सौभाग्य के विपरीत था । फरमाया करते थे —

"संसार का परित्याग यह नहीं कि कोई स्वयं को नग्न कर ले और लंगोट बांधकर बैठ जाए । संसार-परित्याग यह है कि वस्त्र भी धारण करे, खाना भी खाए, जो कुछ उसे पहुंचे उसे जाइज, उचित समझे, लेकिन जमाखोरी न करे और अपनी प्रकृति को किसी वस्तु से न बांधे, किसी में आसक्त न हो ।"

फरमाते थे कि हज़रत ईसा ने संसार को स्वप्न में देखा, बूढ़ी, कुरूप नारी की शक्ल में और पूछा—तेरे कितने पति हैं ? उत्तर दिया—असंख्य । पूछा—क्या किसी ने तुझे तलाक भी दिया । उत्तर दिया—नहीं, मैंने स्वयं उनको खत्म कर दिया ।

शेख़ साहब का कहना था कि धन को जमा नहीं करना चाहिए । धन का वास्तविक आनंद खर्च करने में है, जमा करने में नहीं । जो स्वयं धन के

पीछे नहीं दौड़ता, जो इसका लोभ नहीं करता बल्कि उसको खर्च करता है वह वस्तुतया संसार का त्याग करने वालों में शामिल है ।

सामाजिक संबंधों का आधार

हज़रत महबूबे-इलाही फरमाया करते थे कि सामाजिक संबंधों में प्रफुल्लता और मानव जाति में से हर एक के लिए बेहतरी की इच्छा, शुभकामना ही इस संसार में सफलता दिला सकती है । धैर्य और संतोष से बहुत-सी समस्याएं सुलझ सकती हैं । क्रोध पीने की कोशिश नहीं करनी चाहिए बल्कि जिस व्यक्ति से नाराजगी हो उसे क्षमा करके क्रोध हृदय से निकाल देना चाहिए । यदि किसी व्यक्ति से झगड़ा हो तो अपने हृदय से बदला लेने की भावना निकाल देनी चाहिए । इस प्रकार दूसरों को भी सताने, पीड़ा पहुंचाने का आवेश ठंडा पड़ जाएगा ।

मनुष्य में अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की सामर्थ्य दी गई है । एक नफ़स है, जो वैमनस्य, द्वेष और रंजिश का केंद्र है, दूसरा हृदय है, जो शांति, नम्रता और संतुष्टि का स्थान है । यानी कोई व्यक्ति नफ़स से पेश आता है तो उसके साथ हृदय से व्यवहार करना चाहिए । इस प्रकार झगड़ा और मन-मुटाव समाप्त हो जाएगा लेकिन यदि नफ़स का मुकाबला नफ़स से किया गया तो रंजिश, वैमनस्य, उपद्रव, झगड़े की कोई सीमा न रहेगी । हिंसा से समस्याएं पैदा हो सकती हैं सुलझ नहीं सकतीं । "यदि कोई व्यक्ति मेरे मार्ग में एक कांटा रखे और मैं उसके उत्तर में दूसरा कांटा रख दूं तो संसार में कांटे ही कांटे हो जाएंगे ।" शेख़ अबू सईद अबुल ख़ैर का एक शेर पढ़कर शेख़ निज़ामुद्दीन अक्सर अपने विचारों को स्पष्ट किया करते थे । शेर का भाव यह है—"जो हमारा यार न हो, अल्लाह उसका सहायक हो । जो हमें रंज पहुंचाए उसे जीवन में सुख-चैन प्राप्त हो । हर वह व्यक्ति जो शत्रुता से हमारे मार्ग में कांटे बिछाए उसके जीवन के उपवन में जो सुमन खिले, बेकांटे हो ।"

मनुष्य के संबंधों का स्वरूप तीन प्रकार का होता है; (1) दूसरे के साथ न अच्छाई का संबंध रखे, न बुराई का, ऐसा जड़ पदार्थ के जगत में होता है । (2) दूसरे के साथ बुराई न करे, बल्कि भलाई करे । (3) दूसरे के साथ भलाई ही की जाए, यदि वह बुराई भी करे तब भी उसके साथ भलाई की जाए और प्रतिकार की भावना मन में न लाए । सूफी लोग इसी अंतिम दशा पर अमल करते थे । शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया बार बार अपने शिष्यों को आदेश देते थे कि चाहे कोई दूसरा तुम्हारे साथ बुराई करे या भलाई करे, तुम उसके साथ भलाई

ही से पेश आओ । इसी में मानव-समाज का हित है ।

जीविकोपार्जन (हलाल की कमाई)

शेख़ निज़ामुद्दीन अपने शिष्यों को हलाल की कमाई का आदेश देते थे और हराम की कमाई से मेदे को पवित्र रखने पर बल देते थे । उनका विचार था कि जीविका प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना मनुष्य का कर्तव्य है । जो अपने बाल बच्चों के लिए जीविका का प्रबंध करता है, वह वास्तव में खुदा की आराधना करता है । ऊपर की आय पर निर्वाह करने की आज्ञा केवल खलीफाओं को थी जिन पर दूसरों को सुधारने, शिक्षित करने का उत्तरदायित्व था और जिनको अपना सारा समय इसी में लगाना पड़ता था । साधारण शिष्यों को आदेश था कि श्रम करके जीविका प्राप्त करें । इस विषय में सूफियों के कथन दोहराते थे और कहते थे कि हलाल की रोजी से जो व्यक्ति अपना पेट भरता है उसके लिए अल्लाह का प्रत्येक नाम महामंत्र का प्रभाव रखता है ।

8. बादशाह और राजनीति से परांगमुख/विमुखता

क़ौमों की तक़दीर वह मर्द दरवेश
जिसने ढूंढ़ी सुल्तां की दरगाह

—इक़बाल

चिश्तिया परंपरा का यह सिद्धांत था कि सुलतान और राजनीति से संबंध न रखा जाए । इसमें व्यक्तिगत-निर्माण के अनेक रहस्य छिपे थे । दरबारी जीवन की मांगें आध्यात्मिक जीवन का साथ नहीं दे सकती थीं । बाबा फ़रीद गंजशकर फरमाया करते थे—"यदि तुम बुजुर्गों के पद पर पहुंचना चाहते हो तो बादशाहों से संपर्क मत रखो ।" एक दरवेश सैयदी मौला जरजान से अजोधन आए और बाबा साहब के साथ ठहरे । जब उन्होंने दिल्ली जाने का निश्चय किया तो बाबा साहब ने फरमाया—"सैयदी, तुम दिल्ली जा रहे हो, वहां बादशाहों और अमीरों से संपर्क बढ़ेंगे । स्मरण रखो जो दरवेश बादशाहों और अमीरों से संबंध पैदा करता है उसका परलोक बिगड़ जाता है ।" (तारीख़ फीरोजशाही) हज़रत महबूबे-इलाही की सकल बौद्धिक शिक्षा इसी सिद्धांत के अनुसार हुई थी । वह जीवन भर बादशाह और राजनीति से दूर रहे ।

सुलतान जलालुद्दीन ख़िल्जी संभवतया पहला बादशाह था जिसने शेख़ की पावनता और महानता की प्रसिद्धि सुनकर कुछ गांवों की पेशकश की लेकिन उन्होंने स्वीकार करने से इनकार कर दिया । सुल्तान ने भेंट करने की इच्छा की लेकिन उससे भी क्षमा-याचना की । सुलतान ने ख़ानक़ाह में स्वयं उपस्थित होना चाहा तो फरमाया—मेरी ख़ानक़ाह के दो द्वार हैं, सुल्तान एक से प्रवेश करेगा तो मैं दूसरे से बाहर चला जाऊंगा । फिर सुल्तान ने बिना सूचना के ख़ानक़ाह में आने की इच्छा व्यक्त की । अमीर खुसरो उनके दरबार में राजदरबारी थे । उन्होंने सुल्तान के इरादे की सूचना शेख को दी । वह तुरंत अजोधन अपने पीर(गुरु) की ज़ियारत के लिए रवाना हो गए । सुल्तान को जब यह मालूम हुआ तो अमीर खुसरो से पूछताछ की । अमीर खुसरो ने उत्तर दिया—बादशाह के वैमनस्य से केवल प्राणों का ही भय था लेकिन सूफियों के सम्राट के वैमनस्य

से तो ईमान (धर्म) को खतरा था ।'' (सैरुल औलिया)

अलाउद्दीन ख़िल्जी के प्रारंभिक शासन-काल में कुछ खुशामदी दरबारियों ने सुल्तान के दिल में यह बात डालने का प्रयत्न किया कि शेख़ निज़ामुद्दीन का प्रभाव और लोकप्रियता एक राजनीतिक आतंक का रूप धारण कर सकती है । सुलतान ने इस मत को स्वीकार करने से पूर्व शेख़ की भावनाओं और इच्छाओं का परीक्षण करना आवश्यक समझा । अत: अपने बड़े पुत्र ख़िज्र खां के हाथ एक पत्र शेख़ के पास भेजा जिसमें यह इच्छा व्यक्त की कि शेख़ व्यवस्था के कामों में उनका मार्गदर्शन करें । जब यह पत्र ख़िजखां ने शेख़ की सेवा में प्रस्तुत किया तो उन्होंने बिना खोले वापस कर दिया और फरमाया—''हम फातिहा (क़ुरआन की प्रथम सूरत, मुर्दे की नियाज़) दरवेशों को बादशाहों से क्या काम ? मैं एक फकीर हूं जो नगर और नगर वालों से अलग होकर एकांत में जीवन व्यतीत कर रहा हूं और बादशाह तथा समस्त मुसलमानों के लिए दुआ करता हूं । यदि बादशाह को मेरी यह बात अप्रिय लगती है तो मैं यहां रहना पसंद नहीं करता । वह यह कह दें, मैं यहां से दूसरी जगह चला जाऊं । खुदा की भूमि बहुत विशाल है ।'' यह उत्तर सुनकर सुलतान पूर्ण रूप से संतुष्ट हो गया और कभी उसके हृदय में सूफियों के सम्राट के प्रति दुर्भावना पैदा नहीं हुई । (सैरुल औलिया) ज़ियाउद्दीन बर्नी ने यह शिकायत की है कि लोग दूर दूर के स्थानों से शेख़ की सेवा में हजारों बहानों से उपस्थित होते थे, लेकिन सुलतान के हृदय में कभी हाजिरी का ख्याल नहीं आया । वास्तविकता यह है कि उसने शेख़ की प्रकृति, उनका रुख भलीभांति समझ लिया था, उसने कभी हाजिरी की कोशिश नहीं की । लेकिन ऐसा मालूम होता है कि शेख़ और सुलतान दोनों के हृदय में एक-दूसरे का ध्यान और सम्मान था । जब दक्षिणी भारत के युद्ध के परिणाम बहुत समय तक मालू. न हुए तो सुलतान ने शेख़ से दुआ की प्रार्थना की । फरिश्तों का कथन है कि जब देश के विद्वानों, बुद्धिजीवियों ने सुलतान को नवीन धर्म का प्रचार करने से रोका और यह बात शेख़ की जानकारी में आई तो उन्होंने देश के विद्वानों के लिए कुशलक्षेम की प्रार्थना की ।

अलाउद्दीन ख़िल्जी के युग में शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया की लोकप्रियता चरम सीमा तक पहुंच गई थी । शहजादा ख़िज्रखां शेख़ का शिष्य हो गया था जैसा कि अमीर खुसरो ने कहा है—ख़िज्र ने उनका हाथ पकड़ रखा था ख़िज्रखां ने पैर ।''

बड़ी संख्या में दरबारी, अधिकारी, धनी, विद्वान, व्यवसायी, शिल्पकार, नागरिक और ग्रामीण, स्त्री-पुरुष उनके शिष्यों के मंडल में सम्मिलित हो गए ।

कुतबुद्दीन मुबारक ख़िल्जी के दिल में यह खतरा था कि शेख़ अपने शिष्य ख़िज्रखां की राजगद्दी का पक्ष लेंगे लेकिन यह विचार केवल दुर्भावना पर आधारित था । शेख़ को कभी किसी की राजगद्दी में रुचि नहीं हुई लेकिन सुलतान ने शेख़ की ओर से दुर्भावना पैदा कर ली और उनको सताने तथा हानि पहुंचाने की घात में लग गए । सर्वप्रथम उसने दरबारियों को ख़ानक़ाह जाने से रोका। उनका विचार था कि उनके ही ऊपर की आय और उपहारों से ख़ानक़ाह का लंगर चलता है । लेकिन जब लंगर में कोई कमी न आई तो सुलतान ने दूसरे सताने के उपाय खोजने शुरू कर दिए । न केवल दरबार में खुलेआम शेख़ को बुरा-भला कहना शुरू कर दिया बल्कि घोषणा की कि जो भी शेख़ का सिर लाएगा उसको पुरस्कार दिया जाएगा । फिर मुलतान से शेख़ रुकनुद्दीन मुलतानी को दिल्ली बुलाया ताकि वह अपनी ख़ानक़ाह यहां स्थापित कर लें और दिल्ली के लोग सूफियों के सम्राट से कटकर उनकी और आकृष्ट हो जाएं। लेकिन शेख़ मुलतानी ने पहले ही दिन सुलतान को इस विषय में निराश कर दिया । ऐसा हुआ कि जब उनके शुभागमन की सूचना सूफियों के सम्राट को मिली तो वह दिल्ली से कई मील बाहर उनके स्वागत के लिए गए । दोनों बुजुर्गों ने (जो आपस में एक-दूसरे का बड़ा सम्मान करते थे और बहुत ही अच्छे संबंध रखते थे) बहुत देर बातचीत की, फिर सूफियों के सम्राट स्वामी अपनी ख़ानक़ाह वापस आए और शेख़ मुलतानी महल में चले गए । सुलतान ने उनसे प्रश्न किया कि सबसे पहले किससे भेंट की । फरमाया—"जो दिल्ली का सबसे अच्छा इनसान है ।" इस वाक्य ने बादशाह की सकल आशाओं पर पानी फेर दिया । सुलतान ने एक मस्जिद बनवाई और दिल्ली के समस्त विद्वानों, सूफियों को संदेश भेजा कि इस मस्जिद में जुमे की नमाज पढ़ें । शेख़ ने उत्तर में कहला भेजा कि मेरे घर के पास की मस्जिद का मुझ पर अधिक हक है और सुलतान की मस्जिद में नमाज पढ़ने नहीं गए । इसी बीच एक और पेचीदगी यह पैदा हुई कि दिल्ली के शेख़, विद्वान चांद-रात को (जिस दिन द्वितीय का चंद्रमा दिखलाई देता है) सुलतान को बधाई देने के लिए दरबार में उपस्थित हुआ करते थे । शेख़ ने इस काम के लिए अपने सेवक इक़बाल को भेज दिया । संभव है कि इक़बाल अलाउद्दीन ख़िल्जी के दरबार में भी इसी तरह चांद-रात को शेख़ का प्रतिनिधित्व करते हों । यदि ऐसा था तो सुलतान अलाउद्दीन ख़िल्जी के शेख़ से विनम्र श्रद्धा का द्योतक है । कुछ उपद्रवी दरबारियों ने मुबारक ख़िल्जी की बुद्धि में यह विचार डाल दिया कि नौकर को भेजना सुलतान का अपमान है । अत: उसने आदेश दे दिया कि आगामी चांद-रात को यदि शेख़

स्वयं नहीं आए तो उन्हें जंजीरों से यहां लाया जाएगा । इस बात से समस्त नगर में विशेषकर शेख़ के शिष्यों और अनुयायियों में एक हलचल मच गई । (सैरुल औलिया)

ऐसा मालूम होता है कि शेख़ की कम-से-कम एक भेंट सुलतान से अवश्य हुई थी । कब और क्योंकर उसका निर्णय संभव नहीं । 'सैरुल मजालिस', 'सैरुल औलिया' और 'दुरर निज़ामी' तीनों में लिखा है कि शेख़ ने एक बार फरमाया कि जब सुलतान मुबारक ख़िल्जी से उनकी भेंट हुई तो उन्होंने एक हदीस पढ़कर सुनाई जिसका भावार्थ इस प्रकार है—

''जो व्यक्ति सदाचारी और नेक आदमी की संगति में बैठेगा, अगर्चे रात-दिन की कुल घड़ियों में एक क्षण ही बैठा होगा तो खुदा इस सत्कर्मी से प्रश्न करेगा कि तूने अपनी संगति का दायित्व पूरा किया या नहीं ।'' जब परिस्थितियां अधिक जटिल हुईं तो शेख़ के कुछ शिष्य सुलतान के पीर शेख़ ज़ियाउद्दीन रूमी के पास यह संदेश लेकर गए कि सुलतान को दरवेशों पर अकारण सख्ती करने और कष्ट पहुंचाने से रोकें लेकिन जिस समय यह वहां पहुंचे तो मालूम हुआ कि शेख़ रूमी बहुत बीमार हैं । अत: वह संदेश उन तक न पहुंचाया जा सका, दूसरे दिन उनके निधन का समाचार आ गया । तीसरी की फातिहा में सुलतान और शेख़ निज़ामुद्दीन का आमना-सामना हो गया । शेख़ क़ुरआन के पाठ में लीन थे । सुलतान आया तो आदर सत्कार के लिए खड़े न हुए कि क़ुरआन पढ़ने वाला खुदा की सेवा में—उसके सम्मुख होता है वह किसी का आदर-सत्कार नहीं कर सकता । सुलतान इस विमुखता पर बहुत क्रुद्ध हुए । कुछ लोगों का कथन इसके विपरीत है । वह कहते थे कि शेख़ ने सुलतान को सलाम किया था लेकिन सुलतान ने अहंकारवश उत्तर नहीं दिया । खैर जैसा भी हुआ हो, दोनों के संबंधों में और अधिक खिंचाव पैदा हो गया । (सैरुल औलिया)

जिस शाम को चांद दिखाई देने वाला था, ख़ानक़ाह के लोगों में बहुत अधिक परेशानी थी । सुलतान यदि अपनी शक्ति के अभिमान में शेख़ को बंदी बनाने का प्रयत्न करेगा तो उसका परिणाम क्या होगा ? कुछ शिष्यों ने शेख़ को परामर्श दिया कि वह चले जाएं और इस प्रकार एक आपत्ति को समाप्त कर दें । इक़बाल ने कई बार पूछा कि डोला (पालकी) किस समय बुलाया जाए । लेकिन शेख़ हर बार सुनकर अपना मुख दूसरी ओर फेर लेते थे । जब ख़ानक़ाह में अधिक परेशानी के चिह्न दिखाई देने लगे तो निकटवर्ती लोगों ने कहा कि परेशान न हों, रात मैंने स्वप्न देखा है कि एक बैल मुझे मारने के लिए आगे बढ़ रहा है । मैंने उसे सींग पकड़ कर उलट दिया । उस दिन शेख़

अपनी माता की मज़ार पर भी गए और दुआ की कि यदि सुलतान की हठ पूरी हो गई तो फिर मैं मज़ार पर नहीं आऊंगा । जिस शाम को चांद दिखाई दिया, शेख़ अपनी छत पर टहल रहे थे और एक शेर पढ़ रहे थे जिसका भावार्थ था—''ए लोमड़ी तू अपने स्थान पर क्यों न बैठी रही, तूने शेर से पंजा लड़ाया और अपनी सजा देख ली ।''

सुलतान का प्रेमपात्र खुसरोखां हजार स्तंभों की छत पर सुलतान के साथ था, उसने अपने वंश के लोगों को पहले से ही महल में बुला रखा था, उसने सुलतान का सिर धड़ से पृथक किया और हज़ार स्तंभों के नीचे फेंक दिया । (सैरुल औलिया, सैरुल आरिफ़ीन)

खुसरोखां ने नासिरुद्दीन की उपाधि धारण की और राजगद्दी पर बैठ गया । उसने विद्वानों तथा शेख़ों की सहानुभूतियां प्राप्त करने के लिए खजानों के मुंह खोल दिए । शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के पास भी पचास हज़ार तनके' भेजे । उन्होंने स्वीकार कर लिए और तुरंत निर्धनों, अनाथों और जरूरतमंदों में बांट दिए । जब सुलतान ग़यासुद्दीन तुगलक खुसरोखां को पराजित कर दिल्ली की राजगद्दी पर बैठा तो सर्वप्रथम प्रश्न उसके समक्ष खजाने का था । उसने उन सब लोगों के पास जिनको खुसरो ने रुपया दिया था, अपने आदमी भेजे और खजाने का रुपया लौटाने की मांग की । अधिकांश लोगों ने वह धन सावधानी से रखा था । जब दरबार के लोग गए तो बिना किसी प्रतिवाद के धन लौटा दिया । जब शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया से रुपया वापस करने की मांग की गई तो उन्होंने फरमाया कि वह रुपया तो 'बैतुलमाल' (वह कोष जिसका धन सार्वजनिक कामों में खर्च हो) का था और उन्होंने तुरंत बांट दिया था । कहते हैं कि बादशाह को यह उत्तर पसंद न आया ।

ग़यासुद्दीन तुगलक को विद्वानों का सहयोग प्राप्त था । वह उनसे बहुत गहरे संबंध रखता था । कुछ लोगों ने इस अवसर से लाभ उठाकर शेख़ की समा की मजलिसों पर आपत्ति की और उनको गैरशरई यानी इस्लाम विरोधी बतलाया । सुलतान ने न्याय-सभा बुलाई, जिसमें विद्वान इस प्रश्न पर शरई रूप से विवाद करने के लिए एकत्रित हुए । समा के सम्मान, प्रतिष्ठा का निर्णय सुलतान शम्सुद्दीन अल्तुमश के शासन-काल में हो चुका था और उस काल का सबसे प्रसिद्ध काजी और अध्यक्ष मौलाना मिंहाजुद्दीन सिराज इसका सबसे बड़ा प्रेमी था और उसकी गाना सुनने की मजलिस (समा) में हज़रत महबूबे-इलाही भी शरीक हुए थे ।

न्याय-सभा में शेख़ को बुलाया गया । यह धार्मिक न्यायालय था, जिसमें

उपस्थित न होने का औचित्य न था । अत: जाने का निर्णय कर लिया । शिष्यों में बड़े बड़े विद्वान थे जो इस्लामी कानून पर विवेकसम्मत दृष्टि रखते थे, जैसे मौलाना फ़ख़रुद्दीन जरादी, मौलाना शम्सुद्दीन यह्या आदि । शिष्यों ने सभा में सम्मिलित होने की आज्ञा मांगी लेकिन शेख़ तैयार न हुए । न्याय-सभा स्वयं सुलतान की अध्यक्षता में थी । शेख़ से 'समा'—गाना सुनने के औचित्य के विषय में प्रश्न पूछा गया । आपने एक हदीस का उदाहरण देना चाहा लेकिन विद्वानों में शोर मच गया । "यहां हमारा अमल इमाम अबू हनीफ़ा के कथनानुसार है । हम हदीस नहीं सुनना चाहते ।" मालूम ऐसा होता है कि विद्वानों के कोलाहल ने ऐसी दशा पैदा कर दी कि कोई तार्किक बात इस प्रश्न पर न हो सके । शेख़ को विद्वानों द्वारा हदीस के न सुने जाने पर बहुत दुख हुआ और फरमाया ऐसे नगर का अस्तित्व किस प्रकार संभव है जिसमें नबी (पैगंबर मुहम्मद साहब) की हदीस सुनने से इनकार किया जाए, वह नहीं रह सकता । मीर ख़ोरद का कहना है कि ऐसा ही हुआ और मुहम्मद-बिन-तुगलक के काल में ये सब विद्वान दिल्ली से देवगीर जिलावतन किए गए । (सैरुल औलिया) ।

विद्वानों को आपत्ति बुनियादी तौर पर यह थी कि व्यक्तिगत इज्तिहाद (जहां क़ुरआन-हदीस का आदेश स्पष्ट न हो वहां अपनी राय से सही रास्ता निकालना)का अधिकार शेख़ को नहीं दिया जा सकता जबकि इज्तिहाद का अध्याय ही बंद हो चुका है । शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया इज्तिहाद के मानने वाले थे और सीधे क़ुरआन तथा हदीस से निष्कर्ष निकालते थे ।

इस न्याय-सभा से संबंधित मतभेद की शैली पर विभिन्न विचारों को स्पष्ट किया गया । ज्ञात नहीं कि सुलतान को संतुष्टि हुई या नहीं । संभवत उसने शेख़ की मजलिस को बिल्कुल बंद नहीं किया, लेकिन साधारण रूप में सभा की मजलिसों पर प्रतिबंध लगा दिया । शेख़ के मुरीदों में मौलाना फ़खरुद्दीन जरादी ने पत्रिका 'उसूल-अस्समा' में सभी की प्रतिष्ठा-मर्यादा और धर्म-जाति पर लिखा । यद्यपि विवरण ज्ञात नहीं, लेकिन शेख़ को इस न्याय-सभा से दुख पहुंचा ।

इस पृष्ठभूमि में कुछ आश्चर्य नहीं कि सुलतान ग़यासुद्दीन तुगलक और शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के मध्य गलतफहमी बल्कि खिंचाव, मनमुटाव तक की बारी आ गई हो । कुछ लोगों का विचार है कि सुलतान, शेख़ का जीवन, उनके ख़ानक़ाही शिष्टाचार, धार्मिक पूजा-उपासना—प्रत्येक वस्तु से परिचित था, अलाउद्दीन ख़िलजी के काल से वह राज्य के प्रसिद्ध धनीवर्ग में शामिल था और पंजाब में काफी समय तक रहने के कारण बाबा फ़रीद के वंश से श्रद्धास्पद

संबंध रखता था । लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उन सभी तथ्यों के होते हुए भी शेख़ की ओर कुधारणा रखता था । जब वह अपनी पूर्वी क्षेत्र की मुहीम से वापस आ रहा था तो उसने एक संदेश भेजा कि उसके दिल्ली पहुंचने से पूर्व शेख़ दिल्ली छोड़कर कहीं चले जाएं । शेख़ को जब यह संदेश सुनाया गया तो फरमाया—

हनोज दिल्ली दूर अस्त ।
(अभी दिल्ली दूर है।)

तब से यह मुहावरा प्रत्येक व्यक्ति की जुबान पर है । सुलतान के स्वागत के लिए उसके पुत्र जूनाखां ने (जो बाद में मुहम्मद-बिन-तुगलक के नाम से प्रसिद्ध हुआ) एक महल दिल्ली से कुछ दूरी पर अफगानपुर में तैयार कराया । भोजन के पश्चात जब हाथियों का जुलूस गुजरने लगा तो सारा भवन नीचे आ गया और सुलतान उसमें दबकर मर गया । (तारीख़े-फीरोज़ शाही, सैरुल औलिया, सैरुल आरिफ़ीन, तारीख मुबारक शाही) ।

फरिश्ता ने लिखा है शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया, सुलतान ग़यासुद्दीन तुगलक की दुर्घटना से पूर्व स्वर्गवासी हो गए थे, परंतु यह ठीक नहीं है । सुलतान की दुर्घटना रबीउल-अव्वल 725 हिजरी में घटी थी । हज़रत शेख़ का रबीउस्सानी 725 हिजरी को स्वर्गवास हुआ था । परंतु तथ्य यह है कि निधन से पूर्व उनमें बहुत दुर्बलता-निर्बलता आ गई थी, यहां तक कि बिल्कुल बातचीत नहीं कर सकते थे ।

कुछ अंग्रेज साहित्यकारों ने यह संदेह प्रकट किया है कि हज़रत शेख़ ने जूनाखां के साथ मिलकर सुलतान के विरुद्ध षड्यंत्र किया था । परंतु जिस व्यक्ति ने शेख़ के विचारों तथा उनके जीवन की दशाओं का अध्ययन किया है, वह इस प्रकार के दोषारोपण को योरुपीय लेखकों की बुद्धिहीनता तथा षड्यंत्रकारिता मानेगा । दिल्ली के साम्राज्य बनते-बिगड़ते रहे हैं, बादशाह तख्त पर बैठे और कत्ल कर दिए गए, देश की राजनीति ने न जाने कितने उतार-चढ़ाव देखे । बलबन का राजसी आतंक, कैक़बाद की रंगीन महफिलें, अलाउद्दीन की दूसरे राज्यों पर विजय, कुतबुद्दीन का कुमार्गगमन (बेराहरवी) सबके दृश्य आंखों से गुजरते रहे परंतु शेख़ ने कभी राजा और राजनीति की ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखा ।

9. व्यक्तित्व का आकर्षण और समय-पद्धति

सितारे इश्क के तेरी कशिश से हैं कायम
निज़ामे-महर की सूरत निज़ाम है तेरा
—इक़बाल

'सैरुल औलिया', 'खैरुल मजालिस', 'जवामे उलकूल' आदि में बिखरे हुए नाना प्रकार के संदर्भों को एक संयुक्त रूप दिया जाए तो हज़रत महबूबे इलाही की एक जीती-जागती तस्वीर मन में उतर आती है ।

लंबा कद, गौरवर्ण, भरी हुई दाढ़ी, युवावस्था में कुंतल केश, मुख पर अत्यधिक विलाप से घाव के निशान, बड़ी बड़ी आंखें जिनमें रात्रि जागरण के कारण लालिमा छाई है, सिर पर अम्मामा, चौड़ी आस्तीन का कुर्ता—उनके व्यक्तित्व में बहुत आकर्षण था । ज्ञात नहीं सूफियों-पीरों की परंपरा में पारिभाषिक शब्दावली विशेषकर 'होश दरदम' (तुरंत होश में आना, नशा उतरना), 'ख़ल्वत-दर-अंजुमन' (महफिल में एकांत का अनुभव), 'निगहदाश्त' (चौकसी, हिफाज़त), 'याददाश्त' (स्मरण-शक्ति) और 'वुक़ूफे़ ज़िमानी' (बाह्य वस्तुओं का, समय का ज्ञान) तथा 'वुक़ूफे़ क़लबी' (अंतर्ज्ञानी, अंतर्मुखी) उन तक पहुंची थीं या नहीं, लेकिन उनके संपूर्ण व्यक्तित्व पर वह रंग चढ़ गया था जिसमें प्रत्येक सांस की हिफाजत की जाती है और प्रत्येक पग पर दृष्टि रहती है । खुसरो ने उनकी दशा का वर्णन करते हुए कहा है—उनका हृदय प्रेम की पीर में—प्रेमाग्नि में जलकर राख हो गया था और उनके नेत्र आंसुओं से भरे रहते थे, यह लाल स्वर्ण था और वह पारा ।

रौब, दबदबे की यह दशा थी कि सब उपस्थित लोगों की आंखें झुकी रहती थीं और महफिल पर एक आध्यात्मिक मस्ती, उल्लास के साथ साथ आतंक एवं क्रोध का प्रभाव भी अनुभव होता था (सैरुल औलिया) और तो और अमीर खुसरो की यह दशा थी, मजलिस से दो-तीन बार उठकर जाते थे । मौलाना बुरहानुद्दीन ग़रीब ने एक बार उसका कारण पूछा तो फरमाया, यदि अधिक बैठता हूं तो मेरे अंदर कंपन उत्पन्न हो जाता है (नफासुल-अनफास), लेकिन शेख़ प्रत्येक

आगंतुक से बातचीत करते थे । उसकी समस्याओं को, उसकी कठिनाइयों को समझते थे और अथाह सांत्वना से ऐसी दशा पैदा करते थे कि आगंतुक बिना कहे नहीं रह सकता था । यदि कभी अधिक लोग एक साथ एकत्रित होकर आते तो उनको पृथक पृथक आने का आदेश देते थे जिससे उनकी व्यक्तिगत समस्या का निदान खोजा जा सके । जनसाधारण के समूह में अपने प्रतिदिन के उपस्थित होने वाले शिष्यों की उपस्थिति पसंद नहीं करते थे । ('सैरुल औलिया', 'फ़वाइदुलफ़वाद') ।

शेख़ की विद्वता का महत्व निर्विवाद है । उन्होंने बदायूं और दिल्ली के उच्च अध्यापकों से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी और दिल्ली की ज्ञान-गोष्ठियों में अपने ज्ञानसागर का सिक्का जमा दिया था । अध्ययन में रुचि थी । रात्रि में एकांत के समय पुस्तकें सामने होती थीं, पढ़कर पुस्तकों पर अपनी प्रतिक्रिया तथा सम्मति बहुधा अरबी भाषा में लिख दिया करते थे । दृष्टि अंतिम अवस्था में ऐसी थी कि स्वयं उनके कथनानुसार बारीक से बारीक लिखी पुस्तक रात्रि में पढ़ लिया करते थे । (सैरुल-औलिया)

'फ़वाइदुलफ़वाद', 'दुरर निज़ामी', 'सैरुल औलिया' आदि में शेख़ के उपदेशों के मध्य में पुस्तकों के नाम आए हैं । इससे अनुमान होता है कि वह तफ़सीर (भाष्य) हदीस, फ्रिकः, तसव्वुफ की महत्वपूर्ण पुस्तकों का अध्ययन करते थे । बाबा साहब की वसीयत के अनुसार उन्होंने क़ुरआन शरीफ कंठस्थ कर लिया था । हदीस पर उनकी दृष्टि ऐसी थी कि दिल्ली के प्रसिद्ध नक्शबंदी शाह गुलाम अली साहब कहा करते थे कि सुलतान जी बड़े हदीसज्ञ थे । 'मशारिकुल अनवार' में 'सही बुखरी' और 'सही मुस्लिम' की दो हजार से अधिक 'हदीसें' (पैगंबर मुहम्मद साहब के प्रवचन) सम्मिलित हैं । यह सब उन्हें कंठस्थ थीं । 'दुरर निज़ामी' में ऐसा ख्याल होता है कि उनकी कुछ मजलिसें 'हदीस' पर विचार-विमर्श करने के लिए निश्चित कर दी गई थीं । विशेष रूप में ऐसी हदीसें विचार-विमर्श का विषय बनती थीं जो व्यावहारिक जीवन से संबंधित हों ।

तसव्वुफ़ के जिन ग्रंथों से हज़रत शेख़ सबसे अधिक प्रभावित थे उनमें 'रुहुल-अरवाह', 'आरिफुल-मआरिफ़', 'कशफुल-महजूब' विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं । 'कशफुल महजूब' के विषय में कहा करते थे कि जिसका कोई पीर न हो उसके लिए यह पुस्तक काफी है । (दुरर निज़ामी)

शेख़ की समय-पद्धति यह थी कि ईद के दो दिन छोड़कर वर्ष भर रोज़ा रखते थे । आध्यात्मिक यात्रा में रोज़े का महत्व बाबा फ़रीद ने उन्हें हृदयंगम

करा दिया था । इफ़्तार के समय (रोज़ा खोलने का समय) शेख़ बैठक में—दीवानखाना में आते । कोई सुकोमल, सुपाच्य वस्तु खाते । यदि रोटी होती तो आधी या एक रोटी, कुछ सब्जी, बहुधा करेलों के साथ या कुछ चावल के साथ सामने रख दी जाती थी । उसमें से कुछ शेष रह जाता जिसे प्रसाद के रूप में उपस्थित लोगों में बांट दिया जाता था । मगरिब (सूर्यास्त होने पर) की नमाज से मुक्त होकर बैठक के ऊपर वाले कमरे में पहुंच जाते । गर्मियों में खुली छत पर तशरीफ़ रखते थे । रात को पलंग पर वितान या मच्छरदानी लगा दी जाती थी । भेंट करने के लिए लोग उस समय उपस्थित होते थे । तर व खुश्क मेवे और स्वादिष्ट शर्बत पेश किया जाता था । इशा की नमाज (रात्रि के समय पढ़ी जाने वाली नमाज) तक मुलाकात का क्रम चलता रहता। भोजन ऊपर ही किया जाता था । शेख़ स्वयं बहुत ही कम खाते थे । दूसरों को खिलाकर खुश होते थे । प्रत्येक व्यक्ति से उसी का हाल पूछते और वस्तुओं के स्वाद के विषय में पूछते । फिर बैठक में जाते और इशा की नमाज पढ़ते । मिलने वाले अब प्रस्थान करने लगते । नमाज से मुक्त होकर फिर ऊपर चले जाते । कुछ देर 'दुरूद' पढ़ने में (पैगंबर मुहम्मद पर सलाम व दुआ) में लीन रहते, फिर पलंग पर बैठ जाते और उनके हाथ तस्बीह (माला) दे दी जाती थी । उस समय अमीर खुसरो के अतिरिक्त किसी को उपस्थित होने की आज्ञा न दी जाती थी । शेख़ पूछते——"तुर्क ! आज के क्या समाचार हैं ?" अमीर खुसरो विभिन्न मनोरंजक कथाएं/प्रसंग सुनाते । उस समय शेख़ के प्रियजनों और बच्चों को भी उपस्थित होने की आज्ञा मिल जाती । जब अमीर खुसरो और बच्चे चले जाते तो इक़बाल कुछ लोटे पानी के 'वुजू' (नमाज पढ़ने से पूर्व हाथ-पैर व मुंह धोना) के लिए रखकर चले जाते । शेख़ अंदर की ओर से कुंडी लगा लेते, फिर रात भर वह होते और उनका रब होता—"मैं अकेला नहीं हूं, प्रात: होने तक मेरे मित्र रात और दीपक होते हैं ।"

कुछ समय अध्ययन में बीतता, शेष इबादत में । जब रात का अंतिम पहर होता तो कोई शेर अनायास जुबान पर आ जाता और घंटों इससे आध्यात्मिक दशा में डूबे रहते । 'सहर' (पौ फटने से पूर्व) के समय सेवक आता और द्वार खटखटाता तथा भोजन परोसता । यह काम ख्वाजा अब्दुर्रहीम के जिम्मे था । उस समय भी बहुत कम खाना खाते, शेष बच्चों के लिए उठाकर रख देते । 'सहरी' (पौ फटने से पूर्व रोज़ा रखने के लिए खाना खाने) के पश्चात ऊपर कमरे में चले जाते । क़ुरआन का पाठ करते और स्मरण में लीन हो जाते । "इश्राक" (सूर्योदय के पश्चात)और 'चाश्त' (सूर्योदय के पश्चात एक पहर

तक) की नमाजों से मुक्त होकर नीचे दीवानखाना में चले जाते । अब दर्शक, शिष्य, अनुयायी—सबका जमघट लग जाता । यह संभव न था कि कोई आगंतुक बिना भेंट किए चला जाए । लोगों के दुख-दर्द की कहानियां उसी समय सुनते । प्रत्येक दुखे हृदय पर मरहम रखते और प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता कि जो प्रमुखता उसे प्राप्त है वह किसी दूसरे को नहीं ।

आधा दिन चढ़ने तक, यह क्रम चलता रहता । दोपहर को कुछ विश्राम करते परंतु उस समय भी कभी कभी लोग जगा देते थे । एक दिन दोपहर को विश्राम कर रहे थे कि एक दरवेश आया । कोई वस्तु उस समय देने के लिए मौजूद न थी । अख़ी मुबारक ने उनको खाली हाथ वापस कर दिया । शेख़ ने उसी समय स्वप्न देखा कि बाबा साहब कुछ क्रोधवश कह रहे हैं कि आने वालों का यथाशक्ति सत्कार करना चाहिए । यह कहां आया है कि एक दरवेश को ऐसी कंगाली में डाल दिया जाए । विश्राम कर तुरंत सेवकों से पूछा कि क्या कोई दरवेश आया था । पूछताछ के पश्चात आदेश दिया कि चाहे वह विश्राम कर रहे हों, आनेवालों की सूचना उन्हें दी जाए । इसके पश्चात उनका यह नियम रहा कि जब विश्राम कर उठते तो पूछते—"कोई व्यक्ति प्रतीक्षा में तो नहीं बैठा और धूप कहां तक चढ़ गई है ?"

एक बार एक पर्यटक—यात्री फकीर हज़रत महबूबे-इलाही की सेवा में उपस्थित हुआ । उस समय दीवानखाना में उसकी इच्छा-पूर्ति के लिए कोई चीज मौजूद न थी । शेख़ ने फरमाया—"ठहर जाओ, जो कुछ भेंट आएगी तुम्हें दे दी जाएगी ।" कुछ ऐसा संयोग हुआ कि कई दिन तक कोई भेंट आदि नहीं आई । फकीर भी प्रतीक्षा करते करते थक गया । शेख़ ने मजबूर होकर अपनी जूतियां उस फकीर को दे दीं । फकीर ने स्वीकार कर लीं और दिल्ली से रवाना हो गया । अमीर खुसरो उस समय शहजादा मुहम्मद के साथ प्रतिवर्ष दिल्ली आया करते थे । संयोगवश मार्ग में उस फकीर से भेंट हो गई । उससे उन्होंने शेख़ की कुशल-क्षेम पूछी । फकीर ने अपना वृतांत कह सुनाया और जूतियां दिखा दीं । खुसरो ने पूछा—"इनको बेचोगे ?" फकीर तैयार हो गया । खुसरो के पास पांच लाख 'तनके' थे; कहा—"खुसरो के पास पूंजी ही क्या है जो प्रिय पर निछावर करे ।"

सब 'तनके' फकीर को दे दिए और पीर की जूतियां सिर पर रखकर दिल्ली पहुंचे । कहते हैं शेख़ ने खुसरो को देखकर फरमाया—

"ए खुसरो तुमने बहुत सस्ती खरीदी ।"

शेख़ अकसर दीवानखाना की छत पर चहलकदमी किया करते थे । कभी-

कभार ही सैर के लिए जमना के किनारे निकल जाते । एक बार देखा कि जमना के किनारे एक कुएं पर एक वृद्धा स्त्री पानी भर रही है । शेख़ रुक गए और वृद्धा से पूछा कि जमना निकट होने पर कुएं से पानी खींचने का कष्ट क्यों उठा रही हो ?" वृद्धा ने उत्तर दिया—"क्या करूं मेरा पति फकीर है । हमारे पास खाने को कुछ नहीं । जमना का पानी पीकर भूख शीघ्र लग जाती है ।" शेख़ के नेत्र सजल हो गए और इक़बाल को भेजकर उसकी आवश्यकताएं मालूम कीं और प्रतिमास उसके खाने का खर्चा भेजते रहे ।

शेख़ बृहस्पतिवार की शाम को या शुक्रवार की प्रात: को अपने एक छोटे-से मकान में जो कैलोकड़ी में था, चले जाते थे ताकि वहां से जामा मस्जिद में जाकर संतोष से नमाज पढ़ सकें । अधिकांश ऐसा होता कि जब शेख़ डोले या सवारी में बैठकर निकलते तो कव्वाल या इक़बाल दोनों ओर से शेर पढ़ते हुए चलते ।

शेख़ मजारों (समाधियों) पर भी अक्सर जाते थे, विशेषकर कुतुब साहब और अपनी माता के मजार पर नियमित रूप से जाते रहते थे । बीबी फ़ातिमा साम के मजार पर भी हाजिरी देते थे । जब सवारी दिखाई देती तो कुछ वेश्याएं बाहर निकल आतीं ताकि शेख़ उनको कुछ प्रदान करें । शेख़ अपने आदमी पहले से भेजकर उन स्त्रियों को रुपये दिलवाते और उनको मार्ग से हट जाने का आदेश देते ।

हज़रत महबूबे-इलाही बहुत अधिक 'नफ़लें' [नमाज जिसे सबाब (पुण्य) के लिए पढ़ते हैं, वह आवश्यक नहीं होती] और 'दरूद' (दुआ और सलाम, विशेषकर पैगंबर मुहम्मद पर) को पसंद नहीं करते थे, उनका विचार था कि रियाज़त, साधना इतनी होनी चाहिए कि उसमें मन की प्रसन्नता शेष रहे । फरमाया करते थे—

"हर समय इबादत में न डूबे रहें, क्योंकि यदि ऐसा करेंगे तो आलस्य और पश्चाताप उत्पन्न होगा तथा पश्चाताप अंत में इबादत के प्रति अरुचि का कारण बन जाएगा ।"

एक व्यक्ति ने पूछा कि आप प्रतिदिन कितना क़ुरआन पढ़ते हैं ? उत्तर दिया—एक पारा । संभवत: वह व्यक्ति यह आशा कर रहा था कि शेख़ कई बार क़ुरआन समाप्त करते होंगे । मीर ख़ोरद का कहना है कि किसी ने कभी यह नहीं कहा कि शेख़ 400, 500 नफ़ल प्रतिदिन पढ़ते थे, परंतु अपने रब

से उनकी तल्लीनता ऐसी थी कि ऐसा प्रतीत होता था वह उनके सामने उपस्थित हों ।

हज़रत महबूबे-इलाही का संपूर्ण जीवन, उनकी प्रात: शाम सब ईश्वरीय प्रेम में मग्न थी और जन-सेवा की बेचैनी में बीती । खुसरो ने उन्हें संबोधित कर कहा है—"तेरा सुंदर मुख मूर्तिकार के लिए ईर्ष्या का कारण है । मैं जितनी भी उसकी प्रशंसा करूं, कम है । मैं संसार में घूमा हूं और सुंदरियों की कृपादृष्टि का आनंद लिया है, मैंने बहुत-से रूपवान देखे हैं, परंतु तू तो वस्तु ही कोई और है ।"

हज़रत शेख़ के शिष्यों को जो श्रद्धा और प्रेम उनसे था उसका अनुमान लगाना कठिन है । अमीर खुसरो की उनके सामने वह दशा हो जाती थी जो सूर्य की ओर दर्पण करने से होती है । मौलाना बुरहानुद्दीन ग़रीब ने जीवन भर कभी ग़यासपुर की ओर पीठ नहीं की । मौलाना ताजुद्दीन दाऊदी जब पीर का नाम सुनते तो नयनों से अनायास ही अश्रु प्रवाहित होने लगते । ख्वाजा शमशुद्दीन नमाज बा जमाअत में (समूह में) खड़े होते तो नीयत बांधने से पूर्व (नमाज पढ़ते समय हाथ नाफ़ के नीचे बांधना और नमाज पढ़ने का संकल्प लेना) नतमस्तक होकर हज़रत का मुख देख लेते थे । मौलाना उलाउद्दीन नीली 'फ़वाइदुलफ़वाद' के अध्ययन द्वारा शेख़ में लीन रहते । शेख़ के वस्त्रों और पत्रों को शिष्यों ने प्राणों से प्रिय रखा । अख़ी सिराज ने शेख़ के प्रदान किए वस्त्रों को अपनी कब्र के निकट दफन कराया और खुसरो ने उनके पत्रों को अपनी कब्र में रखने की वसीयत की ।

10. अंतिम रोगावस्था और निधन

निरंतर रोज़ों और रातदिन की अविराम व्यस्तता ने हज़रत महबूबे-इलाही के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाला, उनको कई शिकायत रहती थीं, कभी ताप, कभी बवासीर, कभी कुछ और कभी कुछ । दवा से अस्थायी लाभ हो जाता, फिर रोग बढ़ जाता, परंतु उनकी दिनचर्या में कोई अंतर न पड़ता था । मौलाना बुरहानुद्दीन ग़रीब का कथन 'नफाइसुल अनफ़ास' में उद्धृत किया गया है—

''एक बार शेख़ुल-इस्लाम निज़ामुद्दीन अस्वस्थ थे । उस समय भी कोई 'नफ़ल' या 'वज़ीफा' (मंत्रजाप) न छूटता था, बल्कि ऐसा होता था कुछ 'रकअत' पढ़ लेते, फिर तकिए पर सिर रखकर लेट जाते फिर उठते और शेष पूरा करते ।''

एक समय किसी रोग के कारण नेत्र-ज्योति पर अस्थायी प्रभाव पड़ गया था । मौलाना बुरहानुद्दीन ग़रीब शेख़ की सेवा में उपस्थित हुए । शेख़ ने मुसाफ़ा के लिए (हाथ मिलाना) अपना हाथ उनकी तरफ बढ़ाया परंतु जिस प्रकार बढ़ाया उससे अंदाजा होता था कि दृष्टि में कुछ अंतर आ गया है । शीघ्र ही यह शिकायत दूर हो गई । एक बार 'समा' (गाना-बजाना) में ऊपर से नीचे फर्श पर गिर पड़े थे और पैर में लंग आ गया था । किसी ने आपत्ति की कि यदि शेख़ निज़ामुद्दीन बुजुर्ग होते तो पैर आहत न होता । शेख़ रुकनुद्दीन अबुलफत: मुलतानी के कानों तक यह बात पहुंची तो फरमाया—किसी बड़े अज्ञानी ने यह बात कही है । यदि शेख़ निज़ामुद्दीन अपने पैर पर न लेते तो जो बला उस समय आई थी वह समस्त दिल्ली को नष्ट कर देती । (बहरुल-मआनी)

सैयद मुहम्मद गेसूदराज का कथन है कि अंतिम दिनों में शेख़ की दिनचर्या में अनियमितता होने लगी थी और उन पर तन्मयता छा जाती थी । हज़रत शेख़ लगभग एक महीना अत्यधिक बीमार रहे । उनकी आंतों में रोग था जिसको हकीम 'ख़ला' कहते हैं ।

अंतिम समय में शेख़ ने बातचीत बहुत कम कर दी थी और भोजन तो बिलकुल ही खत्म हो गया था । एक दिन मछली का रस प्रस्तुत किया गया,

फरमाया इसको नदी में डाल दो । शुक्रवार को दशा जल्दी बदलने लगी । नमाज के मध्य बार बार सिजदे करते थे और फरमाते थे—"आज शुक्रवार है । मित्र को मित्र का वचन अवश्य स्मरण रखना चाहिए ।" बार बार नमाज के विषय में पूछते थे कि क्या नमाज का समय हो गया है और क्या मैं नमाज पढ़ चुका हूं ? सुनने वाले कहते कि आप नमाज पढ़ चुके हैं तो फरमाते कि एक बार और पढ़ लूं, तात्पर्य यह कि प्रत्येक नमाज को दो-तीन बार अदा करते थे और यह दोहराते थे—

मीरोयम व मीरोयम व मीरोयम

(हम जा रहे हैं, हम जा रहे हैं, हम जा रहे हैं ।)

अपने संगे-संबंधियों, सेवकों और शिष्यों को, जो नगर में मौजूद थे, बुलाया और फरमाया—"तुम गवाह रहना (और अपने सेवक इक़बाल की ओर संकेत करके) कि यदि वह व्यक्ति घर में से कोई भी वस्तु बचा रखेगा तो कल क़यामत के दिन खुदा के दरबार में स्वयं ही उत्तरदायी होगा । मैं आज्ञा देता हूं कि जो कुछ घर में है सब खुदा की राह में व्यय कर डालो ।" अत: अन्न, भंडार की वस्तुएं सब गरीबों-मोहताजों में बांट दी गई । इक़बाल ने कुछ अन्न कुछ दिनों के लिए बचाकर रखा था उस पर क्रोध प्रकट किया और फरमाया—"इस मुर्दा मिट्टी को क्यों रख छोड़ा है ?" फिर गरीबों-मोहताजों को बुलाकर आज्ञा दी कि भंडार का द्वार तोड़ डालो और सकल अन्न निडर होकर लूट लो और सब कोठियों में झाड़ू दे दो । देखते देखते क्षण-भर में लोग सारा अन्न लूटकर ले गए । दरगाह के लोगों ने अपने भविष्य के विषय में पूछा, फरमाया, "तुम घबराओ नहीं, तुम्हारा निर्वाह हो जाएगा ।" किसी ने निवेदन किया कि बांटने का काम कौन करेगा ? तो फरमाया—"वह जो अपना भाग छोड़ देगा ।" (सैरुल औलिया)

एक समस्या दफनाने के विषय में थी । श्रद्धालुयों ने बहुत-सी इमारतें बनवा ली थीं और प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता था कि उसकी निर्माण की गई इमारत में दफन किया जाए । मीर ख़ोरद के नाना मौलाना शम्सुद्दीन वामग़ानी ने स्वयं हज़रत महबूबे-इलाही से इस विषय में पूछा, फरमाया—"मौलाना ! मैं किसी इमारत में सोने के योग्य नहीं हूं । मैं जंगल में आराम करूंगा ।" अतएव ऐसा ही किया गया और आपको जंगल में दफनाया गया । मुहम्मद बिन तुगलक ने बाद में भव्य गुंबद का निर्माण कराया ।

दीवानखाना, जो शेख़ के मजार से कुछ फुट की दूरी पर है, ख़िज्रखां द्वारा निर्माण कराया गया है । परंतु यदि यह ठीक है तो शेख़ का जंगल में दफन

होना क्या अर्थ रखता है ? मीर ख़ोरद को जंगल के बजाय दीवानखाने का आंगन कहना चाहिए था । अत: ख़िज्रखां शेख़ के निधन से वर्षों पूर्व मृत्यु को प्राप्त हो गया था । तथ्य यह है कि दीवानखाने का संबंध ख़िज्रखां से जोड़ना अनुचित है । यह इमारत फीरोज़शाह के शासन-काल में निर्माण की गई थी । वह स्वयं "फतूहाते-फीरोज़शाही" में लिखता है कि मैंने हज़रत शेख़ के मजार के निकट एक दीवानखाना बनवाया था "इससे पहले वहां मौजूद न था ।"

निधन से कुछ दिन पूर्व शेख़ रुकनुद्दीन मुलतानी उनका हाल पूछने गए और फरमाया कि अपने विशिष्ट भक्तों को अल्लाह यह अनुमति देता है कि वह यदि चाहें तो संसार में कुछ दिन और रह लें । यदि शेख़ भी कुछ दिन की और मोहलत ले लें तो दूसरों के लिए लाभ और कल्याण का सिलसिला जारी रहे । शेख़ की आंखों में आंसू भर आए और फरमाया—"मैंने स्वप्न में पैगंबर मुहम्मद साहब (सल्ल०) को देखा है" वह फरमाते है कि "निजाम ! तेरी हमें बहुत उत्सुकता है ।"

सन् 725 हिज़री था और रबीउल आखिर की 18 तारीख़ । उधर आकाश में सूर्य उदय हुआ, इधर ज्ञान-शिक्षा का सूर्य अस्त हो गया । शेख़ रुकनुद्दीन मुलतानी ने नमाज-जनाजा (शव को कब्र में दफनाने से पूर्व उसके मोक्ष के लिए पढ़ाई जाने वाली नमाज) पढ़ाई और कहा—"मेरे दिल्ली में चार वर्ष रहने का उद्देश्य यह था कि यह पुण्यकर्म मेरे भाग्य में लिखा था ।"

कुछ कथनों और प्रसंगों में लिखा है कि हज़रत शेख़ ने वसीयत की थी कि तीन दिन तक उनके जनाजे (शव) पर समा (गाना-बजाना) हो, उसके पश्चात उन्हें दफन किया जाए । मौलाना शहाबुद्दीन से इस बात का वचन लिया गया था कि वह इस कार्य को संपन्न करेंगे । कहते हैं कि नमाज-जनाजा के पश्चात गवैये आए लेकिन शेख़ रुकनुद्दीन ने उनको अनुमति नहीं दी । और फरमाया खुदा के लिए ऐसा मत करो । मैं क़यामत के दिन इस वसीयत का जिम्मेदार रहूंगा । लिखा है कि बाद में जब मुहम्मद-बिन-तुगलक को यह ज्ञात हुआ तो उसने खेद प्रकट किया कि इसकी सूचना उसे क्यों नहीं दी गई । वह इस वसीयत को पूर्ण किए बिना उनको दफन न करने देता ।

11. आध्यात्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक प्रभाव

ऐतिहासिक बुद्धि जब समय और काल के बंधनों को तोड़कर, शताब्दियों पूर्व की उस दिल्ली का ध्यान करती है जिसमें महबूबे-इलाही मसनद की शोभा बढ़ा रहे थे तो उनका व्यक्तित्व प्रेम-करुणा, इंसानी दोस्ती तथा जन्म-सेवा का एक आकर्षक चित्र दृष्टिगत होता है जो वाणी से मुखरित है—

यही मक़सूद फितरत है यही रंज़े मुसलमानी
अखुव्वत की जहांगीरी मुहब्बत की फ़रावानी

—इक़बाल

उनकी अर्ध-शताब्दी का सारांश यह है कि अल्लाह की मुहब्बत उनके बंदों की मुहब्बत की गली से होकर जाती है जो व्यक्ति अल्लाह के बंदों से जितना प्रेम करता है, उतना ही वह उसकी दृष्टि में प्रिय है । 'अल खलकुल अयातुल्लाह'—मानव जाति, प्राणिवर्ग अल्लाह की संतान है, पर जब तक मनुष्य अमल नहीं करेगा, उसके आध्यात्मिक भाग्य के द्वार नहीं खुल सकते ।

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया का प्रभाव, उनकी शिक्षा की गहनता और उनके व्यक्तित्व की लोकप्रियता का अंदाजा उस युग के शेख़ों को—सूफियों को पूर्ण रूप में था । अहमदाबाद हो, दौलताबाद हो, नागौर हो या मनेसर हो या पंडोह, प्रत्येक स्थान पर उनकी आध्यात्मिक महानता और बुज़ुर्गी की चर्चा थी । शेख़ अहमद मगरबी अहमदाबाद में उनकी आध्यात्मिक योग्यताओं के प्रशंसक थे और उनके कुछ पत्रों को बड़ी श्रद्धा से अपनी ख़ानक़ाह में पढ़वाकर सुनते थे, शेख रुकनुद्दीन अबुलफत: मुलतानी उनको दिल्ली का श्रेष्ठ मनुष्य समझते थे और उनसे गहरी श्रद्धा प्रकट करते थे । सैयद जलालुद्दीन बुख़ारी मख़दूम जहानियां जब उनकी चर्चा करते थे तो श्रद्धा की सर्वांग प्रतिमा बन जाते, सैयद मीर जाफ़र मक्की ख़िज्र अलैहिस्सलाम का कथन उद्धृत करते थे कि शेख़ अब्दुल कादिर गीलानी और शेख़ निज़ामुद्दीन मुहम्मद बदायूंनी प्रेम-स्थान को पहुंच गए थे और—

खुदा की शपथ—शेख़ अब्बुल क़ादिर गीलानी और शेख़ निज़ामुद्दीन मुहम्मद बदायूंनी हुमा (एक पक्षी विशेष) की भांति इस नील गगन के नीचे न कोई

उत्पन्न हुआ, न होगा, इसलिए कि प्रिय का स्थान स्वाभिमान का स्थान है ।

शेख़ शरफ़ुद्दीन यह्या मुनीरी कहा करते थे कि हज़रत महबूबे इलाही ऐसे उच्चस्थान पर आसीन थे कि स्वप्न और जागरण उसके लिए समान हो गए थे । फरमाते थे—यह स्थान उससे ऊंचा है और यह आनंद खुदाई से—ईश्वरत्व से मिलता है ।

शेख़ फ़रीदुद्दीन नागौरी कहते थे कि संपूर्ण दिल्ली में उनके समान करुणा वाला मनुष्य नहीं देखा । पश्चिमी परंपरा के शेख़ हों या सुहरवर्दी परंपरा के चिश्ती हों या फिरदौसी, सब ही उनके आध्यात्मिक बुजुर्गों तथा नैतिक उच्चता को श्रद्धांजलि पेश करते थे । अमीर ख़ुसरो ने उनके संबंध में यह लिखकर सब कुछ कह दिया—

मिसाले आस्मां बर दुश्मन व दोस्त
कि शेख़ मन मुबारक नुस्ख-ए ओस्त

(आकाश की भांति मेरे शेख़ का साया मित्र और शत्रु दोनों पर है।)

हज़रत महबूबे-इलाही के व्यक्तित्व और शिक्षा के प्रभाव धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न रूपों पर पड़े हैं । उन्होंने समाज में विभिन्न वर्गों की एकता और मैत्री को अपना दृष्टिकेंद्र, लक्ष्य बनाकर एक ऐसा संसार उत्पन्न कर दिया था जिससे मानवीय संबंधों में सम्मान दृष्टिगोचर होने लगा था । एक दिन प्रात: शेख अपने दीवानखाने की छत पर टहल रहे थे । नीचे दृष्टि गई तो देखा कि जमना नदी के तट पर हिंदू मूर्तियों की पूजा में लीन हैं, फरमाया—'हर कौम रास्त राहे दीन व क़िबला ग़ाहे' यानी प्रत्येक जाति का एक धर्म और क़िबलाग़ाह—पूज्यस्थान होता है ।

इस पंक्ति में धार्मिक सहिष्णुता की एक असीम भावना सिमट आई है । एक ऐसे युग में जब मुसलमानों का राजनीतिक प्रभुत्व अपने पूर्ण शिखर पर था, एक धार्मिक नेता की अकस्मात वाणी केवल धार्मिक सहिष्णुता का ही नहीं बल्कि ऐसी धार्मिक विचारधारा का द्योतक है जिसने भारतीय सभ्यता के 'जलवा-ए-सदरंग'—सैकड़ों रूपों को समझ लिया हो और जो यहां की सभ्यता के मानचित्र में प्रत्येक 'धर्म' और प्रत्येक देवालय (क़िबलाग़ाह) को देखने के लिए तैयार हो ।

धार्मिक सहिष्णुता और भाईचारे का जो माहौल शेख़ ने उत्पन्न किया था वह उस वातावरण के लिए अनुकूल सिद्ध हुआ जिसमें भक्ति आंदोलन विकसित हुआ और जिसके भाव में हिंदू तथा मुसलमान धार्मिक गुरुओं ने अपनी धार्मिक विचारधारा के लिए समान तत्वों की खोज शुरू कर दी । अमीर ख़ुसरो का

यह कथन उनका ही नहीं, वरन उनके शेख़ के चिंतन का भी द्योतक है—"हालांकि हिंदू हमारी तरह दीनदार नहीं, परंतु अनेक बातों में हम और वह एक हैं ।"

हज़रत महबूबे-इलाही ने सामाजिक सुधार के लिए लगातार निस्वार्थ संघर्ष किया । ज़िआउद्दीन बर्नी का कथन है कि उनके प्रयत्नों से लोगों में पाप कम हो गए थे । कितने सामाजिक रोग थे—सूदखोरी, व्यापार में अनुचित लाभ आदि जिनके विरुद्ध शेख़ ने शांत लेकिन प्रभावशाली कदम उठाए और लोगों के दिलों में सात्विक जीवन के महत्व का रूप अंकित किया । शेख़ की शिक्षा व सुधार-शैली साधारण प्रचलित पद्धतियों से भिन्न थी । वह खुल्लमखुल्ला आलोचना करने के स्थान पर शांतिपूर्वक अंतर्जगत का निरीक्षण करते थे और अपने विशेष प्रिय ढंग के साथ नैतिक सिद्धांतों की श्रेष्ठता की अनुभूति उत्पन्न कर देते थे । स्वयं शेख़ को अपनी इस कार्य-प्रणाली की सफलता का अनुमान था । एक बार फरमाया था कि उनसे संबंध उत्पन्न करने के पश्चात लोग पाप से घृणा करने लगते हैं । उन्होंने सूफीमत को एक जन-आंदोलन बनाकर सूफीमत और विचारधारा के विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया था । बर्नी का कथन है कि लोगों की रुचि सूफीमत में अत्यधिक बढ़ गई थी और साधारणतया एक भावना ऐसी प्रकट हो गई थी जिससे जीवन के उच्च मूल्यों को खींचा जा सकता था । अमीर हसन अलाए संजरी जिस प्रकार अपना सुरापान का जीवन छोड़कर शेख़ के चरणों में आ गए थे, उसके विस्तृत वृत्तांत मिलते हैं । अली जानदार की यह दशा थी कि शतरंज में हर समय लीन रहते थे । बाद में अमीर खुसरो ने उनके विषय में पूछा तो कहा—"पहले तो मेरी रुचि यह थी कि यदि हज भी करता तो शतरंज न छोड़ता और जब से हज़रत ख्वाजा का शिष्य हुआ हूं शतरंज की बिलकुल लालसा जाती रही ।"

जनता में सहस्रों ऐसे व्यक्ति थे जिनका जीवन शांति से परिवर्तित हो जाता था । "खैरुल-मजालिस" में ऐसे कुछ वंशों का वर्णन है ।

शेख़ ने जिस प्रकार समाज को उत्तम बनाने का प्रयत्न किया उसके कुछ विवरण प्रवचनों आदि में मिलते हैं । वेश्याओं को सद् जीवन की ओर लाने के लिए शेख़ निरंतर वृत्ति देते थे और प्रत्येक अवसर पर उनका भोजन भेजते और अपने शांत व्यवहार से जीवन की ओर प्रवृत्त करते थे । दासता से उनको बहुत कष्ट पहुंचता था । शिष्यों के समक्ष ऐसे ढंग से इस समस्या को रखते कि उनको स्वयं ही दासों को मुक्त करने की प्रेरणा मिल जाती । अमर हसन संजरी ने स्वयं अपना प्रसंग लिखा है और दूसरों के तरीकों का भी वर्णन किया

है कि किस प्रकार शेख़ की शिक्षा के कारण दास-दासियों को स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी ।

शेख़-सम्राट ने अपने जीवन में किसी बादशाह को अपनी ख़ानक़ाह में नहीं आने दिया और बादशाहों तथा राजनीति से बिलकुल निःसंग रहे, लेकिन कुछ निर्धनों की बादशाहत की भविष्यवाणी अवश्य की । फरिश्ता का कहना है कि हसन गंगोह जिसने बाद में बहमिनी राज्य की नींव डाली, दरिद्रता और कंगाली की दशा में शेख़ाधिपति की ख़ानक़ाह में उपस्थित हुआ । उन्होंने एक रोटी का टुकड़ा अपनी उंगली पर रख दिया और फरमाया—"यह तेरे राज्य का छत्र है । जो दक्षिण में तुझे प्राप्त होगा ।" फरिश्ता का कहना है कि जब हसन तख्त पर बैठा तो उसने पांच मन सोना और दस मन चांदी बुरहानुद्दीन ग़रीब के द्वारा शेखाधिपति हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की आत्मा को पुण्य पहुंचाने के लिए बंटवाई ।

मुहम्मद-बिन-तुगलक ने समाधि पर गुंबद बनाया था । फीरोज़शाह ने मकबरे के द्वार और जालियां चंदन की बनवाईं और सोने की कंदीलें जंजीरों से बांधकर चारों कोनों पर लटकवाईं ।

तैमूर जब आग और खून की होली खेलता हुआ दिल्ली पहुंचा तो शेख़ के मजार पर हाजिरी दी थी । बाबर ने जब यात्रा का सामान दिल्ली में खोला तो श्रद्धापूर्वक महबूबे-इलाही के मजार पर उपस्थित हुआ । हुमायूं के मकबरे के लिए जो स्थान निश्चित किया गया था वह शेख़ की ख़ानक़ाह के आश्रय में था । अकबर अनेकों बार मजार पर उपस्थित हुआ । शायद ही कोई मुगल बादशाह हो जिसने श्रद्धा-सुमन भेंट न किए हों। लोगों की तो यह दशा थी कि विगत सात सौ वर्षों में दिल्ली ने अनेक क्रांतियां देखीं, परंतु शेख़ की दरगाह सदैव आध्यात्मिक शांति का केंद्र रही और श्रद्धालुओं का जमघट लगा रहा । मीर ख़ोरद ने लिखा है कि उनके निधनोपरांत मुसलमान, हिंदू, पारसी और ईसाई सबके सब तेरे द्वार की धूलि को अपने सिर का मुकुट बनाते हैं ।

प्रियजन

शेख़ाधिपति की एक बहन थी । उनकी संतान को ऐसे पाला जैसे कोई अपनी संतान को पालता है । स्वयं तो अविवाहित, ब्रह्मचारी रहे लेकिन अपने भानजों से ऐसा स्नेह रखते थे जैसे अपने ही पुत्र हों । ख़्वाजा रफ़ीउद्दीन को क़ुरआन कंठाग्र था (वह हाफिज़े-क़ुरआन थे) । जब तक दस्तरख़्वान पर न आ जाते तो शेख़ भोजन की ओर हाथ न बढ़ाते । भेंट-उपहार में से उनको अच्छा भाग

देते थे । धनुर्विहार, पर्यटन और मल्लयुद्ध उनकी रुचि थी और शेख़ उनकी अभिरुचि की बातें उनसे करते थे । दूसरे भानजे ख्वाजा तकउद्दीन नूह भी हाफिज़े-क़ुरआन थे । प्रत्येक शुक्रवार की रात्रि में क़ुरआन का अखंड पाठ करते थे । यक्ष्मा के रोग (तपेदिक) ग्रस्त होकर शेख़ के जीवन में परलोक सिधारे । शेख़ पर उनके असमय निधन का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा ।

दूसरे प्रियजनों में ख़्वाजा अबू बक़र मुसल्ला बरदार, मौलाना क़ासिम, ख़्वाजा अज़ीजुद्दीन विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं । मीर ख़ोरद ने उनका वृत्तांत 'सैरुल औलिया' में अंकित किया है । ख़्वाजा अबू बक़र हर समय शेख़ की सेवा में लीन रहते थे । सदैव रोज़ा (उपवास) रखते थे । 'समा' में अत्यधिक रुचि थी । मीर ख़ोरद ने उनके विषय में अंकित किया है ।—"जब शेख़ाधीश का निधन हो गया तो आपके कुछ साथी राज्य की छात्रवृत्ति, गांव और जमीन में लीन हो गए, परंतु उन्होंने किसी वस्तु के प्रति कोई आसक्ति उत्पन्न नहीं की ।" मौलाना क़ासिम ने भाष्य-कला पर पुस्तक "लताइफ़ुलत-फ़सीर" संपादित की थी । ख़्वाजा अजीजुद्दीन ने "मजमूउलफ़वायद" शीर्षक से शेख़ के प्रवचनों का संचय किया था । दीवानखाना में इमामत (नमाज पढ़ाने) का दायित्व उन पर ही था ।

बाबा साहब का वंश

हज़रत बाबा साहब की बेटी बीबी फ़ातिमा शेख़ बदरुद्दीन इस्हाक के निक़ाह में थीं । मौलाना इस्हाक के निधन के पश्चात शेख़ाधीश ने उनको और उनके दो अनाथ पुत्रों—ख्वाजा मुहम्मद इमाम और ख्वाजा मुहम्मद मूसा को दिल्ली बुलाया था और उनकी सेवा और संरक्षकत्व में कोई कसर, चूक न छोड़ी थी । ख्वाजा मुहम्मद इमाम को क़ुरआन कंठस्थ था, करुणार्द्र थे, दानशीलता में विख्यात थे । हज़रत महबूबे-इलाही के जीवन में ही लोगों को दीक्षा दिया करते थे । जब शेख़ इमामत करते (आगे खड़े होकर नमाज पढ़ाते) तो रोने लगते । ख्वाजा सैयद मूसा भी हाफिज़ थे, कविता में रुचि थी । अरबी-फ़ारसी में शेर कहते थे । संगीतज्ञ थे । हज़रत महबूबे-इलाही ने जिस प्रकार बदरुद्दीन इस्हाक के परिवार का ध्यान रखा और जो विशेष व्यवहार किया उसका विवरण 'सैरुल औलिया' में देखा जा सकता है ।

विशेष सेवक

शेख़ाधीश के विशेष सेवकों में इक़बाल का नाम सर्वप्रथम आता है । ख़ानक़ाह

में आय की देखभाल और भोजन का प्रबंध उनको सौंपा गया था । शेख़ उनको बड़े प्रेम से 'लाला' कहते थे और उनकी त्रुटियों को या कोताही पर चेतावनी देते तो मधुर वाणी में कहते । दो और सेवकों के नाम मिलते हैं—ख़्वाजा मुबश्शिर और ख़्वाजा अब्दुर्रहीम ।

खलीफा (उत्तराधिकारी या प्रतिनिधि) व शिष्य

जिस प्रकार वृक्ष अपने फल से जाना जाता है उसी प्रकार एक पीर के कार्यों का ठीक ठीक अनुमान उसके उत्तराधिकारियों और शिष्यों से होता है । अमीर खुसरो ने शेख़ के खलीफाओं के विषय में कहा है—"उनके निःस्वार्थ शिष्य 'वली' के दर्जे को प्राप्त थे । रात्रि-जागरण तथा माला (तस्बीह) के जाप द्वारा भक्तों की महफिल में हलचल मचा दी थी ।"

और इसमें कोई अतिशयोक्ति न थी कि उनके प्रतिनिधियों में शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहलवी, शेख़ कुतबुद्दीन मुनव्वर, मौलाना फ़खरुद्दीन जराददी, मौलाना अलाउद्दीन नीली, मौलाना बुरहानुद्दीन ग़रीब, मौलाना शम्सुद्दीन याह्या, काजी मुहीउद्दीन शानी ज्ञान व अध्यात्म में उच्च स्थान को प्राप्त थे । उनके प्रतिनिधियों या खलीफाओं ने समस्त हिंदुस्तान को अपनी वाणी से आंदोलित कर दिया और चिश्तिया संप्रदाय का कार्य हिंदुस्तान के कोने कोने में पहुंच गया ।

उन खलीफाओं के आध्यात्मिक कार्यों का अनुमान क्षेत्रीय इतिहास के गहन अध्ययन की प्रतीक्षा में है । उनकी महानता की यह दशा थी कि उनमें प्रत्येक अपने स्थान पर स्तंभ था । मौलाना शम्सुद्दीन याह्या के ज्ञान, तेज और प्रतिष्ठा की यह दशा थी कि हज़रत चिराग़ देहलवी ने उनके विषय में कहा था—"मैंने ज्ञान (विद्या) से प्रश्न किया बता मुझे, किसने जीवित किया ? उसने उत्तर दिया—शम्सुद्दीन याह्या ने ।"

शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ ने दिल्ली में चिश्तिया संप्रदाय की परंपराओं को उस समय जीवित करने का प्रयास किया जब मुहम्मद-बिन-तुगलक ने सूफियों को बलपूवर्क दक्षिण और कश्मीर भेजना आरंभ कर दिया था और दिल्ली में भी संप्रदाय के सब महत्वपूर्ण केंद्र उखड़ने लगे थे । मीर मुनव्वर और हमीद कलंदर को उनकी सभा में वही सुगंध आती थी जो महबूबे-इलाही की सभा में आती थी—"मुझे तेरी सभा से मित्र की सुगंध आती है । तेरी सुगंध से हृदय प्रसन्न है कि यह मित्र की गली से आती है ।"

मौलाना हिसामुद्दीन मुलतानी फिक: में (धर्म-शास्त्र) में ऐसे निपुण थे कि हिदाया के दोनों भाग कंठाग्र थे । काजी मुहीउद्दीन नीली 'कशाफ़' और

'मिफत:' अर्थात क़ुरआन की तफ़सीर के विशेषज्ञ थे । मौलाना बुरहानुद्दीन ग़रीब जिनके नाम पर बुरहानपुर बसाया गया, ज्ञानसंपन्न, एवं दृष्टि संपन्न थे । शेख़ के प्रति श्रद्धा की यह दशा थी कि अंतिम सांस तक कभी अपनी पीठ ग़यासपुर की ओर नहीं की । फिर शेख़ के शिष्यों में अमीर खुसरो और हसन जैसे कवि और ज़ियाउद्दीन बर्नी जैसे इतिहासकार शामिल थे ।

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया के खलीफा, उपासक, विद्वान और विरक्त व आत्म-संयमी व्यक्तियों का एक वर्ग ऐसा था जो शेख़ के प्रेम में मग्न उनकी शिक्षा का अत्यंत नि:स्वार्थ भाव से तथा दृढ़ संकल्प से प्रचार करने में लग गया ।

कुछ प्रमुख संदर्भ-ग्रंथ

1.	फ़वाइदुलफ़वाद	प्रवचन—शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया संपादन — अमीर हसन अला संजरी फ़ारसी—नवल किशोर (1885) उर्दू—मलिक फज़लुद्दीन, मलिक चननुद्दीन, मलिक ताजुद्दीन, लाहौर
2.	सैरुल औलिया	मीर ख़ोरद फ़ारसी — चिरंजीलाल, दिल्ली (1885) उर्दू अनुवाद — ग़ुलाम अहमद बर्यां, दिल्ली (1320)
3.	ख्रैरुल मजालिस	प्रवचन — शेख़ नसीरुद्दीन चिराग़ देहलवी संपादन — हमीद कलंदर फ़ारसी — संशोधित, खलीक़ अहमद निज़ामी, अलीगढ़ उर्दू — मौलाना अहमद अली टोंकी दिल्ली (1315)
4.	दुरर निज़ामी	प्रवचन — शेख़ निज़ामुद्दीन संपादन —अली जानदार फ़ारसी — सालारजंग अजायबघर (प्रतिलिपि) हैदराबाद
5.	नफाइसुल-अनफास	प्रवचन—शेख़ बुरहानुद्दीन ग़रीब संपादन — मौलाना रुकनुद्दीन हस्तलिपि—कुतुबखाना, नदूतल अलमा, लखनऊ
6.	अहसनुल अक़बाल	प्रवचन—शेख़ बुरहानुद्दीन संपादन — मौलाना हम्माद

		हस्तलिपि — व्यक्तिगत
7.	**जवामिउलकलम**	प्रवचन — सैयद मुहम्मद गेसूदराज संपादन —सैयद मुहम्मद अक़बर हुसैनी फ़ारसी — संशोधित; मुहम्मद हामिद सिद्दीकी मुद्रित — इतंज़ामी, कानपुर उर्दू अनुवाद — मुईनुद्दीन दख़ाई, कराची